

भु के मार्ग में ज्ञान का प्रकाश

सद्गुरु श्रीविजयकसर चरित-बहाराज

— — —
अनुवादक—

ब्रह्मचारी शङ्करदास जैन

— • —
प्रकाशक—

मत्री श्री आत्मानन्द जैन सभा,

अम्बाला शहर ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

{ सं० २४२८

म स० ३७

मूल्य ०-१-

{ विक्रम सं० १९८६

{ हस्वी सं० १९३२

प्रकारक—

मन्त्री, श्री आत्मानन्द जैन सभा,
अम्बाला शहर ।



मुद्रक—

सत्यव्रत शर्मा,
शांति, प्रेम शीतलागली



मैं इस पुस्तक को पूज्यपाद श्री श्री १००८
आचार्य देव श्री विजयवल्लभ सूरि
के
करकमलो में
सादर अर्पण करता हूँ
और उनका आशीर्वाद
अपनी आत्म-शुद्धि के लिए
चाहता हूँ ।

दासानुदास—
शंकरदास जैन ।

दान-प्राप्ति-स्वीकार

निम्नलिखित दानी महाशयों ने इस पुस्तक की छपाई में आर्थिक सहायता दी है।

- १—ला० रघुनूराम सत्यपाल जैन नौज्ञक्वरा जोरा ८०)
 २—ला० चादनमल रत्नचन्द जैन बेंकर
 अम्बालाशहर ५८)
 ३—ला० राधामल चोतिप्रसाद जैन अम्बालाशहर ५०)
 ४—बानू कुन्दलाल जी० ए० धी० टी० निकोन्ट
 (विवाह की प्रसन्नता में) २५)

यह सज्जन हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। इन्होंने अपनी शुभ कमाई का कुछ अंश धार्मिक साहित्य के प्रकाशनायक अर्पण कर यश और पुण्यापार्जन किया है। आशा है कि अन्य महात्तुमात्र भी इनका अनुकरण करेंगे।

—प्रकाशक।

मेरी प्रार्थना

मान्यवर सज्जनो !

इस पुस्तक के कर्ता पूज्य योगीश्वर श्री १००८ स्वर्गवासी श्री विजय केसर सूरिजी महाराज हैं। मूल पुस्तक गुजराती भाषा में है। इस पुस्तक के पढ़ने से मुझे बहुत आनन्द और लाभ हुआ, इसलिए मेरी भावना हुई कि मैं इस पुस्तक का हिन्दी भाषा में अनुवाद करूँ जिस से हिन्दी भाषा के प्रेमी भी इस पुस्तक से लाभ उठायें। पुस्तक के पढ़ने से प्रतीत होगा कि ग्रन्थकर्ता ने जनता पर कितना उपकार किया है। बड़े-बड़े गहन विषयों को वैसी सरल रीति तथा युक्ति प्रमाण में बखण किया है। जो सज्जन ध्यान पूजक पढ़ेंगे, वे चाहे किसी भी मत मतान्तर के अनुयायी हों वे इस से अग्रगण्य लाभ उठावेंगे। सुयोग्य अध्यापकों द्वारा यह पुस्तक जैन विद्यालय, गुण्डुल और पाठशालाओं में भी पढ़ाई जा सकती है। इतने लाभ और गुणों को देख कर मैंने इस पुस्तक का गुजराती से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। मेरा भावना थी कि पुस्तक का मूल्य कम से कम रकरा जाय। जिन सज्जनों ने दान देकर मेरी इस इच्छा को पूर्ण किया है उन का मैं आभार मानता हूँ।

यद्यपि यह पुस्तक आकार प्रकार में छोटी है तथापि ज्ञान का भण्डार है—इस में कोई भी सन्देह नहीं।

।दि सज्जनगण इस पुस्तक को पढ़कर उस के विषय
। क्रिया में लायगे तभी-में अपने इस प्रयत्न
समझूंगा ।

।स पुस्तक के अनुवाद तथा प्रकाशन में मुझे निम्नलि
म सहायता मिली है —

१—श्री पंडित शशिभूषण शास्त्री ।

२—भाई फूलचन्द ह० टागा-पाटण ।

३—ला० ज्ञानचन्द जैन एम० एम-मी ।

४—श्री पंडित हसराम जा शास्त्री ।

में उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ ।

पुस्तक के अनुवाद तथा छपाई आदि में यदि कां प्रतिक
गई हो तो पाठकगण मुझे क्षमा करें ।

दिनांक—

शकर दाम् ।

मूल लेखक की प्रस्तावना

इस पुस्तक का नाम 'प्रभु के मार्ग में ज्ञान का प्रकाश' इसलिए रखा गया है कि इस पुस्तक में प्रथक् पृथक् विषय आत्मा को प्रकाशित करने वाले हैं। कर्म से बद्ध आत्मायें प्रायः अज्ञानानुत् होती हैं। अज्ञान ही अन्वसार है और ज्ञान प्रकाश। प्रभु मार्ग में चलते हुए यदि ज्ञान की ज्योति साथ हा तो मनुष्य बौद्ध और बठिन मार्ग में चलता हुआ भी ठोरु रा मे वच कर सी रा निश्चित स्थान पर पहुँच जाता है। एव ज्ञान भा माया प्रपञ्च में ठोरु राने वाले जीव को उचा कर मीधा प्रभु मार्ग का आर ले जाता है।

इस पुस्तक में अलग अलग अठारह विषय हैं और वे मय प्रभु मार्ग में ले जाने के लिए अपने अपने स्थान पर सहायक हैं। कई उनमें ग्रहण करने के लिए, कई समझने के लिए और कई त्याग के लिए उपयोगी हैं। योग्य साधक अपनी योग्यता के अनुसार इसमें ग्रहण कर सकता है।

इस पुस्तक को मैंने स्वतंत्रता में नहीं लिखा। जैसे इसमें मेरे विचार हैं, ऐसे ही दूसरे महानुभाव ग्रन्थकर्त्ताओं के भी हैं। मैंने इन विचारों का समूह इस पुस्तक में सार रूप से इस लिए किया है कि वे मेरे विचारों के अनुकूल हैं। यदि इन विचारों में किसी को लाभ पहुँचे तो इस लाभ के अधिकारी वे ही प्रथ क्ता होंगे। एक कूप या नदी का पानी अमुक कारण से पीने और दूसरे से नहीं पीने की भाँसा मने जीव का कर्मा

स्वास्तर की हुई रामना के कारण पानी पिलाना, यह भी एक प्रकार का बालजीवा के लिए उपहार का कारण समझा जाता है। यहाँ उद्देश्य इस पुस्तक के लेखन में रखा है। शेष बात यह है कि यदि मित्रों अन्यत्र मर्यादा नाय तो भा मुँह मोठा होगा, हममें शक्य नहीं।

विषय अनुक्रमणिका—(१) प्रेम आत्मस्वरूप है, (२) जो निम की खोज करे वह उमरों पायगा। (३) आत्मा स्वतंत्र है (४) काय कारण व नियम विषय अचल है। (५) एकाग्रता पूरक ध्यान करना योग्य है। (६) कर्म का सत्ता। (७) कम की सत्ता तोड़ने का ज्ञान आत्मा को है। (८) पुनर्पार्थ। (९) विचार और इच्छा के बल का उपयोग। (१०) चाय की परित्रता। (११) माया का न्याग। (१२) मन्य की प्राप्ति के लिए नशा बन्दो। (१३) विचार शक्ति का प्रभाव। (१४) आध्यात्मिक जीव। (१५) स्वावलम्बन। (१६, १७) आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए निम प्रकार और कर्तों से आरम्भ करना। (१८) सुख और शान्ति के लिए परमात्मा का स्मरण। यह इस पुस्तक के विषय हैं।

वि० सं० १९८४
भाषण बदा ३
रविवार

आचार्य श्री विनयकेसर मूरी
बोशनगर।

ॐ ह्रीं अहम् नम ॐ

प्रभु के मार्ग में ज्ञान का प्रकाश

प्रथम प्रकरण

[प्रेम]



मस्त सद्गुणों का मूल प्रेम है। इस प्रेम का आधार शरीर का सौन्दर्य या धन की प्रचुरता नहा। मुझे किन्मा मे भविष्य में लाभ होगा, किन्मी मे महायता प्राप्त होगी यह विचार इस प्रेम का आश्रय नहीं। परन्तु केवल सत्ता को पहुँचा हुई आत्मा अनन्त शक्ति वाला है और

आत्मा ही परमात्मा है—जैसा मानकर आम दृष्टि मे आत्मा पर प्रेम करना ही वास्तविक प्रेम है। इससे अतिरिक्त अन्य प्रेम, प्रेम नहीं किन्तु मोह है, राग है। दूसरों को शान्ति देकर आप सुख मानना यह प्रेम है। प्रेमी, दूसरा को पवित्र बनाने का कार्य करता है। प्रेम के विशाल राज्य मे सद्गुण रूप अनेक छोटे छोटे राज्यों का समावेश होता है। जहाँ प्रेम निवास

करता है वहाँ ही आत्म ज्योति का प्रकाश है, प्रेम के भीतर आत्मा का अनुभव हाता है। जो सत्ता, शक्ति, राय और धन का अधिकार से प्राप्त नहीं होती, वह प्रेमी उपदेशक के वचन में निराम कर्ता है, जिस उपदेशक में प्रेम नही उसका उपदेश चाह कितना हा दूसरो को मोहन घाला क्यों न हो, पाण्डित्य से परि पूण क्या न हो ता भी उसका कोई प्रभाव नहीं पडता, हममें विशेष अधिकता का कुछ अनुभव नहीं हाता। प्रत्युत वह उपदेश आत्म जागृति और अन्तर्गीय प्रेम के अभाव से रूग्ण और प्रभाव हीन हा जाना है। जैसे श्रद्धा विना साध्य का साधन है वैस प्रेम साधन नहा किन्तु साध्य है और उह साधन का फल स्वरूप है। प्रेम को प्रकाशित करने का एक ही मार्ग है। और वह यह है कि दूसरा को दान देना। ज्ञान प्रेम का प्रणाली है इसके द्वारा प्रेम रूप जल, बाहर निकल कर दूसरो का शान्त करता है। मँगन जाने याचरो को एक पैसा देना या राटा का टुकडा देना, कार्य कार्य नहीं, परन्तु प्रेम, दरिद्रता के मूल कारण, दु गिया और अज्ञानिया के अज्ञान को दूर करता है समर्थ है। प्रभु महाश्वर ने ऋषि दन वाले चडकौशिक का भी, उसका मूल प्रयत्नान् उमे सत्य मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। एक ऋषि दन वाले पर भा इतनी उदारता वा होना, यह प्रेम का हा अद्भुत महिमा है। भगवद्व ने प्रभु महाश्वर म्यामा को ६ नाम न कल्पनावात कष्ट लिये। भगवान् ने उनको घडे ही वैर्य स सहन किया, भगवान् चाहते थे कि हमके बदल स उससे आत्मा का

कुछ उपकार हो जाय परन्तु उसे जोषि बीज सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो सकी। इस कारण भगवान् के नेत्रों से जो अश्रुधारा बहा यही प्रेम की निमल धारा थी। यह रोता हुआ हृदय उम अभव्य जात्र को बोध प्राप्त कराने में निष्फल हुआ। भगवान् के हृदय में एक ब्रह्मरूपी आत्मा के लिये भाङ्गितना प्रेम है यह इस उदाहरण में स्पष्ट जाना जा सकता है। प्रभु शान्तिनाथ ने-पूर्व जन्म में मेघरथ राजा के जन्म में-स्वयं माया से उने हुए क्यूतर का राजा के भय से मुक्त करन के लिये अपने शरीर का मांस काटकर दिया और धान से क्यूतर को छुड़ाया। इस कार्य की जड़ में प्रेम ही गर्भित है। कमठ तपस्वी के जीव ने ईश्या से पार्श्वनाथ प्रभु को नामिका तरु जल बपा कर उसमें डुबाने का प्रयत्न किया, परन्तु भगवान् ने उसको बोधि बोन देकर अपने ही प्रेम मार्ग का पथिष बनाया। यहाँ पर भी प्रभु ही अपना कार्य कर रहा है। नेमनाथ प्रभु ने गृहस्थाश्रम में अपने विवाह के समय, रात का भोजन देने के निमित्त इकट्ठे किये हुए पशुओं को मुक्त कराने में अपने विवाह का परित्याग कर लिया और मयासाश्रम में प्रविष्ट होगये। इस अपूर्व त्याग में उहाने समार को प्रेम का भाग बतलाया। मैतार्य मुनि ने, सोने के जौ चुगने वाले पक्षी को मुनार से बचाने के लिये मुनार के हाथ में अपने जीवन की आहुति देकर विश्रव्यापी प्रेम की सुगयता बतलाइ। मुनि सुव्रतस्वामा ने, भरुव के राजा की आरसे अश्वमेध यज्ञ में बलिदान होते हुए घाडे को बचाने के लिये, जीवना के प्रेम के कारण एक रात्रि में

६० योजना की यात्रा करने का महा कष्ट उठाकर वहाँ के राजा को प्रतिग्रोध लेकर जो उन जीवों की रक्षा की था यह प्रेम की ही अपार महिमा का परिणाम है। गृहस्थाश्रम में भी त्यागिया की तरह धार्मिक जीवन बिताने वाले सठ सुदर्शन न अभया रानी का बचाने के लिये मौन धारण कर, सूली पर चढ़ना स्वीकार किया।

तीर्थंकर देवों के समप्रसरण में गाय भिन्न, बजरा और बाघ जिल्ला और चूहा, साँप और मोर ऐसे ही दूसरे प्राणी-विशेष परस्पर विरोध हैं— एक ही स्थान पर शान्तिपूर्वक बैठते हैं और अपना जाति विरोध भूल जाते हैं, इसका यही कारण है कि श्री तार्किक देवा ने अपने जीवन में विश्वव्यापी प्रेम को प्रकट किया है।

पशु पक्षी भी प्रेम को निर्मा अशक्त समझते हैं। अपने प्रमा का नरफ बुद्धि अपनी पूछ हिला कर, घोडा दिनदिनाकर प्रकट करता है। गाय भैंस अपने मालिक की तरफ प्रेम से आती हैं और हाथों को चिह्न से चाट कर प्रेम को जतलाता है।

सब प्रेमा मनुष्यों का उपदेश प्रायः निरर्थक नहीं जाता। लोग उन्हें हृदय में चाहते हैं, उनके रचनों में अमाय शक्ति होती है इसलिये जीवों के हृदय पट पर सत्ता के लिये गहरा अमर मन्मान के साथ अफिल हो जाता है। यह नगा न्या करत पालों के न होने से दुखित है। जीवों को आत्मिक बाध, न मिलन से ही उनमें आत्मा की प्रान्त शक्ति शुभ और दबा पना रहती है

न्याय प्रेमा महाभाओ की सहायता से उनकी शक्ति शीघ्र हा प्रादुर्भाव होती है ।

प्रेम कभी निष्फल नहीं जाता । प्रेम का उल्ला प्रेम से दे देना जगत् में को उच्चम सदगुण नहीं है । तुम्हारे में यदि प्रेम है ता विश्व के समस्त जाओं की तरफ भे भय न रखकर प्रेम की वषा धरमाओ । मधे प्रेमी म भे भय नहीं रहता उह सधका समान दृष्टि से देखता है ।

गरीबा का अपेक्षा धनी पुण्यों में अधिक प्रेम रखना चाहिये, क्योंकि उनके समान न्यायात्र दूसरा जीव भाग्यवश ही मिलेगा । यह बात देखने म तो तुम्ह पक्षपातपूर्ण अथवा विन्द्व सी मालूम ळगा, परन्तु विचार करने पर मालूम होगा कि धना लोगों का चीजन, आशा-वृष्णा, लाभ-इत्या और अभिमान से भरपूर होता है, इच्छानुसार अनुकूल विषयों क भोगोपभोग में लगे रहने के कारण परमार्थ मान का काय तथा परोपकार करने का काम उनको भाग्य मे हा मूमता है ।

अपन आपको दुख का अनुभव न होने मे उन्हें दुनिया क दुग्मित आमा का पीडा का विचार नहीं होता । इन्द्रियों क पापक विषयों की प्राप्ति के कारण वे सुखी मालूम पडते हैं परन्तु आत्म जागृति म, आमधन से ता वे रङ्क और अज्ञानी होत हैं । कल्याण क मार्ग मे विमुख होते हैं । पूव पुण्य भोगने से पुण्य फल समाप्त हो जाता है, भविष्य के लिये तप्याग न करन से भावी चम म वे अरथ दुग्ता हागे ।

गरी। ता वर्तमान समय में दुःखी होने से इस दुःख में छूटने और भविष्य में सुखी होने के लिये विचार करता है। वर्तमान दुःख उनको भावी सुख का प्रवृत्ति के लिये प्रेरित करता है। इस लिये वर्तमान समय का दुःख जीव भविष्य काल में धनदान ही है। अतः वर्तमान समय में धनवानों को आत्म विचार की जागृति करानी, प्रभु मार्ग पर चलाना, यह विशेष दया का काम है। और यह कार्य ऐसे प्रेमी आत्मा ही कर सकते हैं। श्रीमानों के पास लक्ष्मी होने में वर्तमान समय में वे दूसरा की अपेक्षा नहीं करते, इसलिये प्रेमी आत्मा उन पर प्रेम की उपाय करता करता उनसे और सूखे क्षेत्र रूप हृदय में आम जागृति और स्वयं उत्तम्य के बीच को मकत हैं ॥२१॥

प्रेमी आत्मा में इर्ष्या नहीं होती, इर्ष्या का रूप दूसरा का महिमा को खेदने नहीं देता। जो दूसरा का महत्त्व देख सकते हैं वे ही महत्त्व का मूल्य जानते हैं और वह ही भविष्य के महा पुरुष बनते हैं ॥२२॥

प्रेमा आत्मा गुणानुरागा होता है, जो गुण जिस जात्र को प्यारा लगता है उस गुण के आने के लिये गुणानुरागी जात्र उस दिशा का द्वार खोलता है। यह गुण उस द्वार में जात्र के अन्दर प्रवेश करता है। इस उदारता के कारण वह उन गुणों में भूषित होता है। प्रेमा जावन में अभिमान नहीं होता। वह अपने उत्तम कार्यो को दूसरों के मानन नहीं करना, क्योंकि यह भी गुण अभिमान है। दूसरा का उसाहित करन के लिय प्रसंग से बात करन समय में वह अपनी प्रशंसा नहीं चाहता ॥२३॥

प्रेमी आत्मा अपने अन्धे कर्तव्या का जला नहा चाहता । अन्धका काम करके थदला चाहता-यह प्रेम मे नहीं हाता, यह तो न्ययहारिक लन बन म होता है । नम्रता के गुण मे आकर्षित होकर अभिमाना जीव भी उमक पास मे सद्गुण प्राप्त करते हैं पापी जाजों पर भी उसका द्वेष न होने सवे भी उममे सुधर सकते हैं ॥२५॥

प्रेमा जीव में स्वार्थ नहा होता, इसलिये उसने उपदेश का प्रभाव उत्तम होता है । स्वार्थ त्यागी मधी मूर्तिया ही प्रिख की नेता बनती हैं । २६ ॥

मवा करने मे ही आत्मा की महान शक्तियों का विकाम हाता है । त्याग में ही आत्मा की उन्नति निवास करता है जिमको महा पुन्य बनना है उसे प्रथम अपने मर्मन्व का उल्लिखन करना हागा ॥ २७ ॥

क्रोध और प्रेम में परस्पर विरोध है । क्रोध हानिकारक तत्व है, क्राधी म मनुष्य स्वभाव की निर्मलता और कर्म के सिद्धान्त की अज्ञानता सूचित हाता है । शागीरिन पाप मे क्रोध का पाप कम नहा बलिक अधिक् है । क्रोध म तो गृहस्थ का धम भी नहीं रहता ना फिर त्याग धम कहा रह सकता है । उमके जीवन में मधुरता नहीं रहती, जीवन क्रूर होनाता है । क्रोधा मनुष्य मे इषा, अभिमान, कृपणता, प्रिसाम घातकता, निर्दयता, कठोरता, हठनाद् शोका तुग्ता और दुराग्रह गेम अनेक दुगुण होते है । नम स्वभाव का अल्लन क लिये प्रेम ही मुख्य साधन है । प्रेम से यह समस्त शक्तियें थदल जाता है ।

प्रकरण दूसरा

जिसकी भोज करोगे वह मिलेगा ।

विरम में अच्छे गुरे लेना ही तत्व भरे हुए हैं । इनमें जिनको तुम तलाश करोगे, जिनकी तुम इच्छा करोगे वह तुमको मिलेगा जिनकी तुम हृदय में इच्छा करते हो उसको ही लेने का तुम्हें अधिकार है । धने पर दृष्टि न डाला ? औरों के लोपा को न देखो पर दूसरों के जीवन के शुभ गुणा की ओर ध्यान दो । क्योंकि आत्मा अमर स्वरूप है, दाप विनश्यत हैं उनको आत्मा से प्रथक होना ही पड़ेगा ॥ १ ॥

यह विरम एक पाठशाला है । इसमें रहकर प्रेम का पाठ सीखने और उनका पराक्षा का बहुत से अमर मिलते हैं । इस प्रेम से सब जादों के प्रिय बना । प्रेम यह एक लगाव ही नहीं, परन्तु इसका मूल में अध्यात्म शक्ति का बल है । यदि इसमें यह अध्यात्म शक्ति न हो तो इस प्रेम का उजाल थोड़ी दूर में शान्त होकर निश्रमय मोह के रूप में बल जायगा । उसे प्रेम नहीं कह सकते । प्रेम में यदि सच्ची धिगारी होगी तो हा वह सारे विरम को प्रेममय बनाने के लिये समर्थ होगा । जिन अधस्था में रख गये हा उसीमें रहकर उन्नति करा । विपरीत अमरमय जाय को सहनशील, नम्र, उदार त्यागु निस्वार्थी और विवकी बनना मिलाना है । यह विपरीत मयो अपने जो गत्य बनाने के साधन है उनलिये इनका स्वागत करो । जिन और हंगेड का नाम में उन्ता हुआ

लोहा जैसी चाहे वैसी आकृति को धारण कर सकता है। इसी प्रकार विन्दु और त्रिपरीत अवस्था रूप गेरन तथा हथोड़े के बीच में कार्य करती हुई आत्मा भी अवश्य उन्नति कर सकता है ॥१॥

आगे चलने के लिये तुम कभी सुरग का इच्छान करो। प्रतिमूल अवस्थाओं के बीच में रहकर प्रेम और सकल्प का जल बढ़ाने रहो। जिनमें आत्म प्रेम का जल अधिक हो उनका सहास तथा अनुसरण करने हुए आगे चलो ॥४॥

प्रम, प्रेम को पोषण करता है। इसलिये जिस पुरुष ने मत्र जाया के लिये अपने जीवन में प्रेम निभाया है, ऐसे महापुरुष का आदर्श जीवन अपने सामने रखो। उसके अन्तर रहने वाली न्या, उसके कोमल स्वभाव और दयालु जीवन का विचार करो। इस भावना से तुम्हारा उस महान शक्ति के साथ अन्तराय सम्बन्ध जुड़गा और तुम सब जीवा से प्रेम करना सीखोगे। निम लाने की तार द्वारा त्रिचली का प्रवाह चल रहा है उस तार के साथ लोहे का टुकड़ा लगान से उसमें भी त्रिचली का प्रवाह चलने लगेगा इसी प्रकार जिनमें अपने जीवन में प्रेम का प्रवाह बहाया है उसमें प्रेम रखने से तुम्हारे साथ में भी प्रेम का प्रवाह बनेगा ॥ ६ ॥

अज्ञान सब दुर्गुणों का मूल है इसलिये तुम्हारे सम्बन्ध में जो मनुष्य आज उसके अज्ञान को दूर करने का तुम प्रयत्न करो, उसको विशुद्ध आत्म शक्ति का मान कराओ आगे चलने

का मार्ग दिखाओ । ऐसा करने से तुम अपने प्रेम का सदुपयोग कर सोगे ॥ ७ ॥

जैसे दूसरों को गुणग्राही बनाकर गुणगान से हो गेमे दूसरों से गुणग्रहण करना भी माखो । आमदनी के बिना दान देने से बिनाला अशय निरलेगा, परन्तु बिनके अतरीय कषा सुल गय हैं उनको दमका आशयकता नहीं । जब तरु तुम्हारे म यह महा शक्ति पैदा नहीं होती तब तब हा अपने लिय गुण ग्रहण करने की अधिा आशयकता है । ॥ ८ ॥

तुम्हारे सहवाम म तो ना मनुष्य आरें उनम जो कुड्र भी उत्तम गुण हों उनका प्रदण करो और उनके गुणा का अनुमोदन करो, तसे तुम भी गुणी गोगे । दूसरा के दोष देने से उनके दोष ग्रहण करोगे । आप प्रभु रूप बने बिना दूसरा से प्रभुता नहीं गेग मरते । महापुरुष ही दूसरा म प्रभुता दग मकत हैं वींकि गुणों का अनुराग तथा उचित ममान करना गडे पुरुषों का ही एक गडा लक्षण है ॥ ९ ॥

बिचार यह एक शक्ति है । प्रत्येक शक्ति अपने जैसा दूसरी शक्ति को उत्पन्न अधरा प्ररुट करती है । हरएक बिचार के अनुकूल दूसर बिचार वातावरण म म तुम्हारी और आरुर्पित होंगे । तुम बिस मनुष्य का तब प्रेम और सदुभाज दशात हो उनम उस मनुष्य म रहा बाल प्रम तथा मरुगुणाका बिलसित तथा प्ररुर्पित करत हा, और उमर मरु गें भी तुम्हारा और

वैसा ही भाव उदय होगा। विचारा को निमल बनाओ, क्योंकि इनमें विचित्र शक्ति रहती है। तुम्हारे शब्दा में तुम्हारे विचारों का भाव मालूम हो जाता है। तुम्हारा भविष्य बनाने वाला तुम्हारे विचार ही हैं। तुम्हारा हर एक विचार बल शक्ति रूप में बाहर जाता है और वहाँ से अपने-वैसा विचारों को लेकर वापिस आता है। ये उक्त विचार शरीर को नीराग बनाते हैं। वचनों में बल पैदा करते हैं और मन को तट सङ्कल्प जाला बनाते हैं ॥११॥

प्रेम उन्नति का मायक और द्वेष उमका मायक है। इन नियमों का जहाँ-जहाँ भंग होता है वहाँ इसका परिणाम दुःख और ज्यादा अथवा अल्प रूप में प्रकट हुए विना नहीं रहता। यह नियम अटल है ॥१२॥

प्रेम, प्रेम को और द्वेष, द्वेष को उपन्न करता है। विश्व में उत्तम भावना फैलाओ और सामने से उच्च भावना, त्याग सहित ग्रहण करो। विश्व के जानों को बल दो, इसमें तुम में मरुट के समय अधिक परिणाम में बल प्राप्त होगा। विश्वास रखो कि हम प्रकार महायत्ना करने में तुम्हारी महायत्ना भा अन्य लोग आपत्ति के समय में करेंगे। द्वेष का बन्ना प्रेम रूप में हा उसमें तुम्हारी अधिक उन्नति होगा ॥१३॥

द्वेषी को मित्र बनाओ और उम्मा भी बनाएँ चाहो। अपना ही बन्ना उपकार में दो। प्रेम से ही द्वेष जीता जाता है। द्वेषी की तक प्रेम के विचार भेजो। इससे उम्मा द्वेष

असमर्थ हो जायगा। द्वेष से प्रेम अधिक बलवान् है। इसलिये प्रेम से ही द्वेष को जीतना चाहिये। यदि द्वेष के चले शत्रु से प्रेम करोगे तो उसका द्वेष तुम्हारे तरफ पहुँच ही नहीं सकेगा। दूमरा ही उन्नति करने से अपनी उन्नति स्वतः हो जाती है ॥१४॥

नम्रवाणी भवर्ग में मे प्रवाहित होता हुआ दिव्य रस है। प्रेम की मधुग्ता और कृष्ण दृष्टि म विग्र के जीवा को देरो ॥१५॥

प्रकरण तीसरा

आत्मा की स्वतंत्रता

हमारी आत्मा के अनिरिक्त हम विश्व में कोई दूसरी शक्ति सुख दुःख देने क लिये समर्थ नहीं। हम अपनी शुभाशुभ प्रवृत्ति के परिणाम से सुख और दुःख भोगते हैं। कम के फल को देने वाली किमी दूसरा शक्ति का सहारा लेने की आत्मा को आवश्यकता नहीं ॥ १ ॥

अथ सत्ता की प्रसन्नता या अप्रसन्नता, आत्मा क हितार्थित म बाधा डालने की शक्ति नहीं रखना आत्मा अपना अन्धी या बुरी प्रवृत्ति से जा जा कारण उत्पन्न करता है अपने परिणाम का अनुभव करती है। अथ सन्नित्थय होता है कि आत्मा का अपने हा आलम्बन न गार्यता है ॥ २ ॥ अथ सन्नित्थय को अपनी सत्ता न विश्वास नहा दाता इति ज्ञेय ये अपने स

अधिक दिमी महामत्ता की कल्पना करते हैं और उसके चरणों में अपना मस्तक झुकाते हैं तथा इस समारक दुःखा में मुक्त होने के लिये उसकी कृपा की याचना करते हैं ॥ ३ ॥

मनुष्य के मन्य की निरलता के कारण निम्नी हुई याचक वृत्ति, जीव को बहुत हानि पहुँचानी है। जीव अपनी कल्पित महासत्ता पर अपना मारा आधार रखकर अपनी मलाइ के लिये पुरुपाथ करना बन्द कर नेता है ॥ ४ ॥

अपने अतिरिक्त दूमरी शक्ति के उपर अपन हित के लिए आधार रखने की कुप्रवृत्ति तब अत्यन्त बढ़ जाती है, तब मनुष्य का मुग्य कतव्य उस सत्ता को प्रमत्त करना हो जाता है। वह उसकी ही मरा, पूना और भक्ति करता है और—आप एक स्वतन्त्रशाला आत्मा है—इस विचार का भूल कर अपना मस्तक बहा ही मुकाता हुआ इस समय का अपना कतव्य कम कर नेता है ॥५॥

ऐसी विफल प्रवृत्ति में मनुष्यों को घबाने के लिए भगवान् महावीर स्वामी ने कर्म की सुन्दर भावना का ज्ञान देकर जगत् को एक उत्तम तत्व का पाठ पढाया है। जैन धर्म की कर्म फिला मफी इमी कारण सभी दार्शनिक विचारों में अधिक उपयुक्त और सत्त पर निर्भर है।

इस कर्म के विषय पर जैन धर्म की अन्य विशेष विचारणाओं का आधार भी इमी में है। कर्मों के नियम अटल हैं।

हो सकता है कि मनुष्य, समान के बाध द्रव्य नियमों का ताड़न और उसमें ठहराव हुए तट से छूट सक, परन्तु कर्मों के नियमों का नहीं ताड़ सकता। यह ही सकता है कि उन नियमों का अनादर करे। परन्तु उसमें उपभ्रष्ट हुए तट के भोग से नहीं छूट सकता ॥१॥

“अमुक संयोग और अमुक प्रवृत्ति का अमुक परिणाम होता है” इसमें यादा भी फरफार नहीं हो सकता। इसका नाम प्रकृति नियम (कानून बुद्धरत) या कर्मों का नियम है। प्रकृति नियम, तुम्हें यह करो या यह करोगे ऐसा आज्ञा नहीं देता पर यदि तुम्हें अमुक परिणाम ही आरक्ष्यकता हो तो अमुक कार्य करा, ऐसा कहता है ॥२॥

जों जीवन में जों, कर्म करने से कर्मक, कर्म में शक्ति और पुण्या से पुण्य मिलेंगे। जो जीवन बड़ा होगा। यह प्रकृति कहती है, परन्तु तुम क्या चीजों? यह आज्ञा प्रकृति नहीं देता। तुम को जो पसन्द हो जाता, परन्तु जीवन के पञ्चाङ्ग उमर में तुम्हें दुमरे फल की आशा न रखोगे। “कर्म करना चाहिये” इसकी स्वतन्त्रता प्रकृति ने तुम्हें दी है पर इसमें व्यभिचारे होने वाले फल से तुम नहीं बच सकते। यह कर्मों का महा नियम है ॥३॥

कर्म के नियम में क्या नहीं, प्रभु का कृपा या प्रसाद का उममें प्रवेश नहीं। यदि यह जाना तो कर्मों का अटलता नहीं

कहा जा सकती। इस नियम में यदि फेरफार हो तो जिस सामग्री में से क्या फल निकलेगा—इसका निर्णय न हो। यदि ऐसा ही तो मनुष्यों का सम्पूर्ण पुण्यपथ रूक जाय। इसलिए कहा है कि प्रकृति में दया नहीं पर इममें न्याय अजरय है ॥१०॥

यदि कर्मों की यह सत्ता दया वाली और निचल हृदय फल होता तो मनुष्या का कल्याणमया हाथ धरि को सुन कर प्रत्येक समय में प्रकृति का अपन नियम बदलन पडत। इमसे कर्मों का एक भा नियम निरिखत न रहना और अ-व्यवस्था बढ जाती। सब प्रकार के फल मनुष्य अपन कर्तव्य स पाता है। इम सत्य का दर्शन प्रभु महाशय ने सारे विश्व को कराया है। इस अनुभव सिद्ध नियम में उच्च में उच्च सत्ता भी हस्तक्षेप करने के लिए समर्थ नहीं। समस्त इम सत्य का जय भूल जाना है तब तो महापुरुष प्रकृत द्वारा इसी सत्य को फिर समझाते हैं। बुद्धि के इस मृष्टि में कृपा अथवा प्रसाद को स्थान नहीं। ना किसी के सुख या दुःख में समर्थ नहीं। एक कौड़ी जैसे छुद्र जीव लेकर बकरती राता व इन्द्र आदि तक का जा सुख या दुःख होता है वह उनका योग्य या अयोग्य कर्तव्य का ही फल है। उनका कर्म ही सुख दुःख का कारण है।

जो निमग्न योग्य नहीं उसको वह नहा मिलता इम सत्य का भूल कर मनुष्य बहुधा किसी कल्पित सत्ता के आगे ना अपन कर्तव्य में से फल मिलना चाहिये उमके बदल दूमेरे फल की प्राथन करता है। अपन लिय प्रकृति के इस अदल नियम को बदल

का अनुनय विनय करता है। पर ते भ्रान्त मनुष्य। ऐसा अनुनय विनय करके अपने कर्त्तव्य फल से बचने के लिये तेरा यह प्रयत्न निष्फल है। इस फल का निष्फल करने के लिये किमा कल्पित महा सत्ता के आगे कल्याणनक मुग्ध धनाकर आसू गिराने की तेरी मेहनत निस्सार है। इसलिये तू अयोग्य कर्त्तव्य से उत्पन्न होने वाले परिणाम का सिंह की तरह वार बनकर भाग। वक्रे की तरह में में नकर। यह काय जिसी सत्ता के आधान नहीं कि वह तुम्हें इसमें मुक्त करद। जो कुछ है वह तुम्हारे पर ही निभर है ॥ १५ ॥

तुम एक स्वतंत्र शक्ति हो। तुम में पुनर्पार्थ करने की शक्ति और अवकाश हैं। अतः प्रार्थना करके एक के फल हमारा फल मागने की मूर्खता और याचना की प्रवृत्ति का उन्मूलन करना। इस समय विफल न होने पर कम करत हुए साधन रत्न प्राप्ति करने के स्थान पर यह विचार करा कि "तुम" महान् आत्मा न कैसे ज्ञान प्राप्त किया और कैसे प्रवृत्ति उन्मूलन का नाशकर आत्म स्वरूप को प्रकट किया। कर्म के धंधन का ताड़कर स्वयं स्वरूप से मोक्ष को प्राप्त किया इस बात का उनके जीवन से उदाहरण लेकर उसी तरह धरताय करने के लिये तैयार हो जाओ। प्रभु का श्लोक "वैसा कर्म वैसा फल" इस मनातन सत्य को भूलकर इच्छानुसार फल प्राप्त करने के लिये नैय सदिश में अनुर प्रसार की मूर्खतामयी प्रार्थना करते हैं। जैसे-प्रभो! हम यहने वह दो। प्रभु महावीर न केवल किमा स्थान पर नहीं कहा तुम भरी प्रार्थना

करोगे तो मैं तुम्हारे किये हुए अयोग्य कर्मफल से तुम्हें छुड़ा दूँगा अथवा इसके बन्ने उत्तम फल दूँगा। प्रभु ने तो अच्छा तरह बतलाया है कि तुम्हारा आत्मा हाँ मुस्र दुःख, स्वर्ग नरक, भय या मोक्ष का कत्ता है। यदि मुस्र दुःख देने की शक्ति प्रभु के हाथ में हाती तो ये (प्रभु) ऐसी आज्ञा देते कि भाइयो! तुम अपनी इच्छानुसार कर्म करत जाओ परंतु जिस समय तुम मेरी प्रार्थना करोगे तब मैं उस प्रार्थना से प्रसन्न होकर तुमको उत्तम और मुँद मोंगा फल दूँगा।

जब महाप्रभु ने जो यह बतलाया है कि यदि तुमका उत्तम फल की इच्छा है तो तुम अच्छे कार्य (कर्म) करत जाओ। तथापि लोग मार्ग दर्शक पर ही अपने का पार लगाने का बोझ डाल नेत हैं और कर्त्तव्य कर्म को नहा करत अर्थान् रास्ता निगान वाल के उपर अपने तारने का भार डालकर जन्म मरण के चक्र को बढाने वाल विपरात कर्म करते हैं।

मनुष्य का सर्वदा यह दृढ विश्वास रखना चाहिय कि मुझ मुस्र दुःख देने वाला दूमरा नहीं पर मैं आप ही हूँ। मेर अयोग्य कर्म के बिना का दूमरा मेरा एक वाल भा बोंका नहा कर सकता। इस निश्चय में ही मनुष्य का आत्मबल रहता है। इस कारण मे हा प्रभु महावीर ने आत्ममत्ता को सिद्ध समान अनन्त शक्तिशाली कहा है।

निर्बलता हा दूमरों पर आधार रखने की प्रेरणा करता है। जिस फल का कोई प्राणी चिन्ता अधिकारी है उसको उतनी ही

उसी प्रकार फल देकर कर्म की सत्ता समाप्त होती है। उस फल में मुक्त करने के लिये सहस्रों मनुष्य या देवता उसकी सहायता के लिये आये पर उनमें से कोई भी बचा नहीं सकता। यहाँ यह शका पैदा होती है कि यदि ऐसा ही है तो फिर देव गुरु और दूसरे सत्पुरुषों की सहायता लेने से क्या लाभ? इसका उत्तर यह है कि गुरु आदि, सुख उपानन करने या दुःख हटाने के साधनों का ज्ञान और उन साधनों के अनुकूल कर्म करने का सम्मति दे सकते हैं। ये सत्कर्म करने के लिये उत्साहित करते हैं। दुष्ट कर्म से बचन का जाप्रति उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार गुरु आदि निमित्त कारण हैं। इससे अधिक वे हमारी हानि से लाभ से कुछ भी भाग नहीं ले सकते।

हम दूसरा का उपकार करना चाहें तो उनका उत्तम फल प्राप्ति के लिये उत्तम धीन ध्यान की प्रेरणा कर सकते हैं। अपने उत्तम चरित्र और अनुभव से उनको सन्माग पर चलाने के लिये उदाहरण बन सकते हैं। उनका इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट त्याग का मार्ग दिखाने के लिये हैं।

कर्म से अटल नियम की अभावता को देख कर बहुत से पुरुष डर जाते हैं। परन्तु इसमें डरने की कोई बात नहीं है। जैसे कर्म की सत्ता चलाने है वैसे आत्म सत्ता उसमें कहीं अधिन चलती है। योग्य साधन मिलाने पर पुरुषार्थ करने वाली आत्मा के आगे कर्म की बात है।

प्रकरण चौथा

कार्य कारण के नियम

कर्म का सामान्य अर्थ कर्म ही है और प्रत्येक कर्म का कारण होना चाहिये। हर एक भाव भूत काल के कारण का कार्य है और यही कार्य भविष्य में होने वाले कार्य का कारण बनता है। इस दृष्टि में देखें तो प्रत्येक काय एक प्रकार से कार्य होता हुआ दूसरी दृष्टि से कारण है। इस प्रकार काय कारण का सम्बन्ध है।

विश्व में सर्वत्र कार्य और कारण के नियम एक जैसे हैं। इसमें आस्मिकता का कुछ भी अंश नहीं है। जिसको सद भाग्य या पुण्य फल कहा जाता है वह भी किसी देव की कृपा से अकस्मान् ही प्राप्त नहीं होता। वह भी पूव कर्म का ही फल है। यह क्रिया करना चाहिये या नहीं यह मनुष्य के अपने हाथ में है परन्तु इस कार्य के लिये अमुक अमुक सामग्री चाहिये, ऐसे ऐसे संयोग चाहियें, इसका आधार उपर कहे हुए कार्य कारण के नियम पर अवलम्बित है। जहाँ तक मनुष्य इस सामग्री और संयोग को नहीं जानता अथवा प्राप्त नहीं करता वहाँ तक वह इस कर्म के अधीन रहता है। यह संयोग कैसे होने चाहियें, यह जानकर भी जीव यदि उमी तरह क्रिया न करे या विन्द्व क्रिया करे तो वह उसके अधीन ही रहता है। पर जो इन संयोगों को जानकर उस रीति से बर्तन करे तो ये क्रियायें इसके बराबर

रहेगी। क्रिया का परिणाम जानकर ज्ञान उसीके अनुसार अपनी इच्छा से क्रिया कर सकता है। यह जीव जहाँ तक इन साधना को नहीं समझता वहाँ तक इसको कर्म अपने वश म रखते हैं। इन साधनों को समझ कर प्रबल पुरुषार्थ करने वाला ज्ञान कर्म को अपने आधीन कर सकता है।

ज्ञान एक प्रकार की मत्ता है। ज्ञानी भृष्टि के फाय कारण के नियमों को जानकर उससे अपने इष्ट का सिद्ध कर लेता है इसमें जीव शक्तिमान है। क्रिया करने में साधनों की आवश्यकता है साधना में परिवर्तन करने में क्रिया में भी परिवर्तन जाना है। इस नियम में ज्ञानी पुरुष अमुरु फाय करने के नियम उन साधना को मिलाकर कार्य कर लेते हैं। एम्मे हा उस क्रिया में फेर फार करके या वन्द करके अपनी आवश्यकताओं के अनुसार परिणाम उत्पन्न करन हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इच्छानुसार परिणाम उत्पन्न करने में कम नियम के ज्ञान की मुख्य आवश्यकता है।

जो मनुष्य अपने जीवन का सुधार सकता है व ही अपनी भविष्यता को श्रेष्ठ बना सकता है। भविष्य इसका अनुसार हा बनता है। जो कम के नियमों को जानता है, वह इच्छानुसार अपना भविष्य बना सकता है, इसमें कोई नतीज बात नहीं।

भविष्य में जिस स्थिति या गति में जन्म शक्तियाँ प्राप्त करनी हैं उसका लिये २ भागमा

करने रहना चाहिये और यदि उसके लिये पूर्ण तैयारी हो जाय तो उसका भविष्य वैसा ही बन जायगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य सर्वथा पराधीन नहीं पर अपनी स्थिति के अनुकूल अपना भविष्य बनाने में स्वतंत्र भी है। इस स्वाधीनता के भाव में उस कार्य के लिये उस जीवना उन्माह बढ़ता है। जो कर्म फल देने के लिये तत्पर है उसका भोगने की हमारी इच्छा हो या न हो तो भी उसका प्रवृत्ति अवरण होगी। वह क्रिया रुक नहीं सकती इसी को कर्म का उन्मत्त कहते हैं।

पूरा जन्म की विविध प्रवृत्तिका फल स्वरूप जो कर्म समूह, कर्म की सत्ता में मगूहीन हुआ है, उन "सत्ता" कहते हैं। ध्यान और तपस्या आदि उत्तम परिणाम के योग में इसमें बहुत कुछ परिवर्तन कर सकते हैं।

वर्तमान की शुभाशुभ प्रवृत्ति के परिणाम से जो भविष्य बनना है वह वर्तमान काल में क्रिया कहलाती है। कर्म वर्धन में राग, द्वेष की भावनायें विशेष भाग लेती हैं।

प्रत्येक जीव अपने कर्म में अपने काय करने की शक्ति उत्पन्न करता है। जैसे ही अपने लिए अमुक शरीर में, दशम, कालमें, या भावमें रहने की मर्यादा भी स्वतः बाध लगा है। तो भी जीव इस मर्यादा के परिवर्तन करने में, और शक्तियाँ विकसित करने में स्वतंत्र है अर्थात् इस मर्यादा को मकुचित भी कर सकता है और बढ़ा भी सकता है।

जो कर्म के साधन मनुष्य के सामने उपस्थित होते हैं उसके अपने ही बाधे हुए हैं। इन बाधनों को दूर करना या शिथिल करना अथवा तोड़ना इसी के हाथ में है। जैसे कुम्हार मट्टी से नई नई वस्तुएं बनाता है, उस भी परिणामों द्वारा नये नये कर्मों का समूह करता रहता है।

कर्म करने के जो वा साधन हैं उनमें विचार ही मुख्य साधन है। इसका कारण यह है कि विचार जीवकी शक्ति के बाहिर निकालन में भरने के समान है। विचार मनमें प्रकट मान हैं और विचारों से प्रेरित होकर गति योग्य मानसिक द्रव्य क अणु (पुद्गल) क परस्पर मिलने से अनेक आकृतियों उत्पन्न होती हैं। ये सब आकृतियों मनमें ही चित्र हैं। धार धार केवल एक ही विषय पर विचार करने से हम उस जाति के मस्कार दृढ़ होगये हैं। यह दृढ़ हुए मस्कार विचारों की क्रिया रूपम माने हैं इन विचारों को धरांतर योग्य भाग की ओर लगाये तो मनमें धारण की हुई आकृतियों उत्पन्न करके शुभ प्रभाव बढ़ाया जा सकता है। इसके लिये जैसी जैसी मानसिक शक्ति उत्पन्न करना हो वैसे विचार धार धार करने से हम शक्ति को उत्पन्न कर सकते हैं।

जैसे जैसे मनुष्यों की कामना और कृष्ण कम होता जाता है वैसे वैसे मनकी पवित्रता बढ़ता जाती है। इस प्रयत्न में शुद्ध विचारों का समूह होता है। इसमें उमका मन तनोमय और सुंदर बनता है।

मनुष्यों का जीवन विचार मय है। प्रत्येक समय यह शुभा शुभ विचार करता रहता है। एक जन्म में वह जैसा विचार करता है वैसा ही वह दूसरे जन्म में होता है। इस नियम से हम अपनी मानसिक प्रकृति कैसी बनानी चाहिये, यह काय हमारा ही है। यदि मनुष्य का आचरण अच्छा है तो, इसका यश व लाभ उसको है यदि बुरा है तो इसका दोष भी उसी का है।

मनुष्यों में विचार बल से भी अधिकांश कामनाओं का बल प्रबल होता है। यह कामना और कामना जिस परिमाण में प्रबल अथवा निबल होगी उसी परिमाण में नीच की गति का निश्चय जाना है। अर्थात् कामनाओं के मनुष्य करने का संयोग जहाँ मिल जाय उसी स्थान में इनको जन्म लेना पड़ता है।

विश्व में जो कुछ भी सुख या दुःख का भोग है वह सब हमारे लिये है। उसका कारण हम अवश्य हैं। हम ऐसा कोई भोग नहीं भोगते, जिम्मा हमने मृत उपानन न किया हो। क्योंकि हम इस भोग के कारण को भूल गये हैं पर जो चीज रूप मस्कार सत्ता में स्थापित किया था उसका कम कभी नहीं भूलता।

कार्य करने में जो हेतु या उद्देश्य रहा हो वह कार्य से विशेष सुख होता है। जिस हेतु से मनुष्य कार्य करता है उसका प्रभाव उसके कर्ता के स्वभाव पर होता है। यह प्रभाव बड़ा दृढ़ होता है क्योंकि इससे उस मनुष्य के स्वभाव में सुधार या निगाड़

हुए बिना नहीं रहता। उसका अमर उसके जीवांग धिरस्थायी रहता है।

यदि वह काय बुरा है पर उम कार्य के करन का योग्य बुरा नहा है तो उसका बल एसात्र जन्म में फल देकर गमात्र होताता है। इसका कारण यह है कि उस काय का अमर उसक स्वभाव पर नहा हुआ था। उसम विशेष बलवता शक्ति योग्य नहीं हुई थी।

इससे यह सिद्ध हाता है कि प्रत्येक काय करने म विपक प्रती बुद्धि का उपयोग करा ? काय का नदश शुद्ध गया। स्वार्थ को चित्तमें स्थान न दो। हृदय का निमल रखा। इतना विचार रखने वाला कार्य करने में निभय रहता है। उसका दुःख रूप प्रमाद आगे बढ़ने से रुक जाता है।

कार्य विचार के पाछे स्थूल रूप है। एक क पाछे एक हा जानि के विचार करन करत नन विचारा का समूह इतना प्रबल होता है कि किसी भी प्रसंग के विचार त्रिया रूप स ^{हम} निय करें ता फिर नीध का ^{ति} प्रसंग अपराध के रूप ^{तक} कि वध भी जो मनु यता का

उत्पन्न करके अपनी भावना को बनाते हैं। तब वे प्रबल बनी हुई भावनाओं से प्रसंग मिलते ही कोई वीरता का कार्य कर सकते हैं। पूर्व जन्म में भी निहोने जो जो भावनायें टूट की हैं और वे वहाँ अनुकूल प्रसंग न मिलने से व्ययुक्त नहीं हुई हैं उनका जब इस जन्म में उदय होता है तब ऐसा कोई प्रसंग मिलते ही वे ही भावनायें काय रूप में प्रगट होती हैं। इस प्रसंग पर यह काय "भेने क्यों किया" इसका ज्ञान न होना पर भी कार्य बन जाता है। उस मनुष्य को आश्चर्य होता है कि यह कार्य उमने किस लिए किया, यद्यपि उम विचार करने का प्रसंग भी नहीं मिला था, परन्तु यह भलामानस यह नहीं जानता कि पूर्व जन्म में अनेक विचार करके यह भावनायें टूट का गई थीं इसलिये ही इनके प्रगट होने का अनुकूल प्रसंग मिलने पर यह काय इस जन्म में उन भावनाओं द्वारा बन गया।

इसमें यह समझना चाहिये कि तब कोई भी मनुष्य किसी काय के करने का वार भार आग्रहपूर्वक विचार करता है तब उसकी इच्छाशक्ति इस कार्य को करने के लिए उत्त होती है परन्तु यह कार्य वह बन करेगा इसका आधार योग्य प्रसंग पर निर्भर है। योग्य प्रसंग मिलते ही वह इच्छा शक्ति कायरूप में प्रकट होती है।

विचार करने का शक्ति रखने वाला मनुष्य विचार करते समय स्वतंत्र है क्योंकि पूर्व विचार करने से मन में जो चित्र जीवने बोधा था वह चित्र पूर्व विचारों के विरोधी नहीं उत्तम

विचार उत्पन्न करके बदल सकता है। जब ये पूर्व जन्म की भावनायें निष्काशित स्वरूप धारण कर चुकी हैं तब उनके अनुकूल प्रसंग मिलने ही वे वायु रूप में अवश्य स्फुरित होती हैं। उस समय इस जीव की स्वतंत्रता नहीं रहता और वह परतंत्र हो जाता है। उसके विचार, मन की प्रवृत्ति को किसी प्रकार भी बदल नहीं सकते किन्तु उनके आधीन होकर उनका अनुभव करना ही पड़ता है। चाहे उसकी इच्छा हा या न हो।

मनुष्यो ! यदि इस समय के सरकार तुम को दृष्ट न लगत हों तो तुम इसके विरोधी उत्तम विचार करने का देव अभी स डाओ ? इससे भविष्य में ये मन्त्र बलवान होकर पूर्व के सरकारों को निराल कर दगे। दो मन्त्र लडते हैं उसमें छोटा हारेगा पर वह छाटा मडा जन बडे मडे से अविश्व पुष्ट और बलवान होगा तब बडा मन्त्र उसके मुनासिल म निराल हो जायगा, अत यह मन्त्र उस बडे मडे को जीत लेगा इस दृष्टान्त म सिद्ध होता है कि इस समय का किया हुआ थोडा थोडा पुन्यार्थ प्रबल होकर, दृढ होकर निर्बल हुए पूर्व के पुन्यार्थ को जीत लेता है। त्रिजली का शक्ति को यदि लोहे की तार मे जोडा जाय तो गर्मी उत्पन्न होगी और यदि टेलीग्राफ की तार से लगाया जाय तो गति उत्पन्न करती है। एव यदि उमी त्रिजला का शक्ति को किसी और वस्तु की तार द्वारा उपयाग म लाया जाय ता प्रकाश उत्पन्न होता है अथवा एव ही त्रिजला का शक्ति भिन्न भिन्न साधनों द्वारा भिन्न भिन्न परिणाम, फल का उत्पन्न करती

है। इसी प्रकार एक ही आत्मशक्ति भिन्न भिन्न साधनों द्वारा उपयुक्त की हुई इच्छित फलों, परिणामों की आवश्यकता को पूरा करती है।

प्रकरण पाचवा

एकाग्रता और ध्यान

एकाग्रतापूर्वक किया हुआ काय चाड़े समय में और बहुत अच्छी तरह पूर्ण हो जाता है। चाहे कार्य ग्यूल हो या सूक्ष्म, उसमें मन को लगातार लगाना चाहिये। इन प्रकार मन का एकाग्र होना का स्वभाव बन जाता है। मन को एकाग्र और एकलक्ष्य किये बिना मनुष्य ध्यान के मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता।

जब मन का प्रवाह किन्हीं दूसरे इधर उधर के विचारों से नहीं टूटता पर अग्रद प्रवाह बना रहता है तब आत्मा की मत्ता में स्थित महान शक्तिया प्रगट होती हैं। आत्ममार्ग में आगे बढ़ने की इच्छा न रखने वाला को मनकी एकाग्रता को मीगने का आरम्भ इसी तरह करना चाहिये।

प्रथम जो कार्य करना चाहते हैं उस कार्य को निरन्तर लक्ष्य में रखो। व्यवहार के काय, जैसे कि पढ़ना, लिखना, सुनना, घाते करना इत्यादि में से किसी काय को करते समय उसी काय को लक्ष्य में रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त इधर

संघर्ष चाहे वैसी भी चित्ताकर्षक वस्तु अथवा मनुष्य दृष्टि में आवें, तुम्हारे मनीष कोई बातें हाना हों, गायन होता हो, याजे बनते हा इनकी ओर तबिफ भी ध्यान नहीं र्ना और व्याय-हारिक या परमार्थिक लक्षित काय कुद भा हो, र्सनो पूर्ण करने के बाद ही दूसरे काम म ध्यान देना चाहिये । र्म एकाग्रता से मनुष्य म ग्रहण करने की, धारण करने का और स्मरण करने की शक्तिया बढ जाती हैं । दूसरा के रिचार जानने का शक्ति, बालन मे पहले यह अमुक बात कहगा, इन राता के समझने की शक्ति और अपने विचार ना गहरा असर दूसरो पर डालने की शक्ति र्ती है ।

शताग्रधान अथवा सदृश्राग्रधान जैसे रिस्मय कारक, स्मरण शक्ति के काय, एकाग्रता से ही र्णिय जा सकते हैं । एकाग्रता बढाने का उत्तम साधन ज्ञानोपदेश का सुनना है । धर्म के व्याख्यान को एक चित्त होकर सुनने से एकाग्रता का शक्ति शीघ्रता म विकसित होता है ।

वक्ता के प्रत्येक विचार को ग्रहण करने के लिये उमके शब्दा में एक तार होना आररररर है । उस प्रसग पर चाहे कोई रामे या काइ बोले तो भी सुनने मे लगा हुआ ध्यान दूसरी ओर नहीं जाना चाहिये । इस एकाग्रता के बिना योग रिद्या का मत्य मार्ग हाथ नहीं लगता ।

' मन को एक स्थान मे लोडना, एक विचार पर ठहराना एर आध मद्गुण मे लक्ष्मीन करना, किसी मूर्ति के अवयवों पर

जमाना, ये कार्य एकाग्रता के बिना नहीं बन सकते। इस प्रकार यदि मन को एकाग्र न किया जाय तो काय के अन्त-तक नहीं पहुँचा जा सकता। इस दशा में ही मन को समय में लगाया जा सकता है। समय के बिना समाधि का सिद्धि नही होती और समाधि के बिना वस्तु तत्व का अनुभव नहीं होता इस लिए एकाग्रता की अधिक आवश्यकता है।

इसमें यह सिद्ध होता है कि जो जो काय करो उमका एक चित्त से करो। पढ़ रहे हो तो पढ़ने में चित्त लगाओ, खान बैठते हो तो खाने के मियाय दूसरी ओर ध्यान न ले। यदि लिखते हो तो लिखने में ही ध्यान दो। जप करते हो तो जप में ही एक तार बनो। और सोते समय भी अन्य विचारों को बन्द करो। ऐसे छोटे छोटे कामों का एकाग्रता में करने की देव डालन से अन्त में आत्म ध्यान करते समय आत्मा के मियाय तुम्हारी वृत्ति दूसरा तर्फ नही जायगी। इस प्रकार आत्म साक्षात्कार अर्थात् आत्मा के सच्चे स्वरूप का दर्शन भी एकाग्रता से हो सकता है। इसलिये मन को एकाग्र करने का ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

- ध्यान

मन सकल्प विकल्प रूप है। मन के सकल्प विकल्पों का अन्त होना मन का मरण है। आरम्भ में शुभ सकल्पों के स्थान पर शुभ सकल्प करने पड़ते हैं और शुभ सकल्पों के स्वभाव के पश्चात् शुद्ध आत्मिक सकल्पों के करने का अभ्यास, डालना।

इसके बाद सर्वथा सकल्प बन्द करने चाहिये पर सदा के लिये सकल्प बन्द नहीं हो सकते पर धीरे धीरे सकल्प बन्द करने की प्रवृत्ति के समय को बनाते रहो ।

फिर सकल्प उठते हैं पर वे शुभ होते हैं । इनमें से शुद्ध म जाना पड़ता है वहा स्थिरता न रहे तो फिर शुभ म ही आना पड़ता है । इस प्रकार शुभ स शुद्ध म और शुद्ध में से आत्म स्वरूप में जाने आने का अभ्यास करने के ध्यान किसी समय स्वस्वरूप में ही अधिक समय तक रह सकते हैं । सब कम हीण होने से अन्तत सदा के लिये सब प्रकार के सकल्प नष्ट हो जाने हैं । यही मन का नित्य मरण कहलाता है । मन जैसे-जैसे सकल्प करने बन्द करता है वैसे-वैसे उत्तरोत्तर इन्द्रियों का मरण होता जाता है अपने अपने विषयों म इन्द्रियों की अप्रवृत्ति ही इन्द्रियों का मरण है ।

इन इन्द्रियों का भी एक ही समय अपने विषयों में जाने से नहीं रोक सकते । पाच इन्द्रियों को अशुभ विषयों से हटाने शुभ में लगाना चाहिये । जैसे देव गुरु के दर्शन में प्रभु और सत्पुरुषों के गुणानुवाद सुनने में, देव गुरु आदि के गुणगान में एव शरीर को दूमरों की सेवा में, भक्ति में परमाध और परापहार के कामों म लगाना चाहिये । अन्तर्दृष्टि करके अनान्त्यादि नाद सुनने में, अन्तरीय स्वरूप देखने में, द्रव्य रास के सू घने में इन्द्रियों को लगाया जाता है । इस सूक्ष्म स्वरूप के श्रवण और दर्शन आदि में लगी हुई इन्द्रियें तथा मन, बाह्य स्थूल विषयों की

ओर से उदासीन बनकर अन्दर की तरफ मुक जाता है। अन्ततः वहाँ से भी मन और इन्द्रियो को खींचकर आत्मा के अन्दर लवलीन करना हाता है।

मन और इन्द्रिये अपने साधारण स्वभाव को बदल कर जब आत्मा में लीन होती हैं तब आत्मा की निर्मलता प्रगट होने लगती है। मन इन्द्रिया का स्वामी है। मन की प्रवृत्ति बन्द होते ही इन्द्रियें अपने अपने विषया में जाने से रक जाती हैं। ऐसा होने से नरान कर्मों का बन्धन रुक जाता है और कर्मों का ऐसा स्वरूप अथात् आस्रव बन्द होते ही पूर्व के कर्मा में निर्जरा हाती है। लोहे से मिली हुई अग्नि की तरह और दूध में मिले हुए पाना की तरह जो कर्म आत्म प्रदेश के साथ एक एक रम हा रहे थे वे आत्म प्रदेश से अलग हो जाते हैं यही कर्मों की निर्जरा है।

कर्म बन्ध के हेतुआ का अभाव हाना और पूर्व के सब कर्मों का आत्म प्रदेश से जुदा होना यही मात्त है। ऐसे सब कर्मों का क्षय से शाश्वत सुख की प्राप्ति हाती है। इस लिये विषया की ओर प्रवृत्त होते हुए मनको प्रयत्न प्रयत्न से रोक्ने की अधिक आवश्यकता है।

मन के बरा में होने इष्टानिष्ट विषया में प्रीति और अप्रीति रूप राग द्वेष नष्ट होते हैं। राग द्वेषके नाश होने से परमोपशम भाव (स्थिर शान्ति) प्राप्त होता है। राग द्वेष का उपशम करने वाला जीव मन का निग्रह करने के लिये समर्थ होता है। जो

विश्वमें भ्रमण करता है। इस प्रकार भ्रमण करते हुए मन के रूप को निग्रह करने से राग द्वेष से मुक्त होकर आत्मा परमात्म स्वरूप हो जाता है।

जैसे जैम इन्द्रियाके विषयों की ओर जाकर राग शात होता जाता है तैसे तैमे मनका विस्तार आलम्बन रहित होने में अर्थात् रति के आश्रय से हीन होने के कारण आगे बढ़ने से रूक जाता है। विषयों में प्रीति करना ही रति है। मनके प्रसार का रति का ही आधार है। रति से मन पुष्ट होता है। इस पोषण के न मिलने से मन आगे बढ़ने से रूक जाता है। यह रति अथ विषया का आधार छाडकर ज्ञानका आधार लेती है। जहाँ रति जाती है वहाँ ही मन की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार मन का भ्रमण ज्ञान की तर्फ होता है। इसमें मन विषया को छोड़ कर ज्ञानमें लगनाता है। विषया के आलम्बन में रहित हुआ मन, ज्ञानही मुक्तता से वासित होने में अथ शुद्ध परमात्मस्वरूप मोक्ष के मुख में लग जाता है।

दृष्टानिष्ट में राग तथा द्वेष करना यह मन रूपी वृत्त का दो शाखायें हैं। इनका नाश करो। इसमें मन रूप वृत्त का सकल्प विकल्प रूप प्रवृत्ति बन्द होगी। एसा करने से ही ममत्त्व मोह रूप पापा से मन रूप वृत्त के मूल का सिंचन बन्द हो जायगा। इस प्रकार मूल नष्ट होने से अकुर प्रगट ही नहा जाता।

मन का सकल्पविकल्प रूप व्यापार नष्ट होने से कर्म आत्मन का विरोध होता है और मन में सकल्प विकल्प उत्पन्न

ज्ञान में कर्मा का बंध होता है। यदि आत्मा में विमुक्त हास्य गग द्वेष भं रथाग तो ज्ञानावरण आदि कर्मा का नाश नहीं कर सकोगे इसलिए मन का शून्य करो। विषया में विमुक्त होना अधान मन में विषय विचार का न होना है, यहा मन का शून्य करना कहलाता है। इस प्रकार अपनी शुद्ध आत्मा में लगने में कर्मों पर विनय प्राप्त कर सकोगे ॥२॥

विमला मन गग द्वेष के कल्लोला में शान्त होना है, यहा इस आत्म तत्व को व्यक्त करता है। दूसरा प्रकार मनुष्य तत्व के अनुभवी नहा बन सकत। विज्ञेय हीन मन ही मनुष्य तत्व है। और विज्ञेय वाला मन ही आत्मा का धारि है।

यदि शुद्ध आत्मा की उपामना के उल में मन का निश्चल न किया जाय तो आत हुए कर्म नहीं भ्रम सकत। मन, उचन, पाया की प्रवृत्ति में आत हुए कर्माणु एक मन ही निराय में रक जाने हैं। मन ही प्रवृत्ति उन्त होत ही अनव चकार उपादन निय हुए पृथ के कर्म भा जीण हा जात है तथा आत्मा का शुद्ध स्वरूप कवल ज्ञान प्रगट हो जाता है। इस प्रकार का लाभ हात है।

यदि द्रव्य कर्म तथा भाव समा कलय करने का इच्छा हो तो मन सकल्प विकल्प हीन करना चाहिये। जैसे ज्ञानला क विस्वर जाने में मृय प्रगट हाता है, वैसा ही विषया में विमुक्त तथा शान्त हुए मनमें आत्म ज्यति प्रगट हाता है। आत्मा

सम्पूर्णा और निमल कवल ज्ञान की मूर्ति है। यह राग द्वेषादि दोष हीन मन द्वारा ही प्रगट हो सकता है।

मन, वचन काया क व्यापारा की शून्यता से आत्मा के शुद्ध सहस्रास की शून्यता नहीं होती। शुभाशुभ, मन वचन काया की क्रियायें मस्त्प विनल्प रूप हैं। यह विभाव रूप होने से आत्मा क आगे शुभाशुभ गदल को गडा करते हं। इन शुभाशुभ क्रियाया के न करने मे यागा,—निर्विकल्प ध्यान म प्रविष्ट हो कर आत्मा क सत्य मुख को पाता है। इस निर्विकल्प स्थिति म आत्मा अविनाशी निरुदम आनन्द स भरपूर हाता है। यह शुद्ध स्वभाप्र ही चतय, ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। ज्ञान आदि गुणा का चिन्तन अज्ञात विकल्प करना शुद्ध निर्विकल्प ध्यान नहीं पर वह चिन्तन अथवा भावना है। जैसे पानी के प्रयोग मे किमा वस्तु म मिला हुआ नमक निमल जाता है वसी प्रकार मनको शुद्ध आत्म याग में लयलान करनेमे आत्मा के साथ लगे हुए शुभाशुभ कर्म प्रथक हा जात हैं और निमल चिदानन्द स्वरूप परमात्म रूप प्रगट हो जाता है।

जैसे वृक्ष आपस म सवर्षण खाने मे अग्नि रूप हो जाते है वैसे आत्मा आत्मा का उपासना करनेसे अपने निजी परमात्म स्वरूप को प्राप्त हा जाता है। मन के व्यापार का राकन वाला परमात्मा का ध्यान ही है। मन और इन्द्रियों क व्यापार शान्त हाते ही आत्मा ही परमात्मा नत जाना है। ध्यान म सब कुछ साध्य है।

प्रकरण छठा ।

कर्म की सत्ता तोड़ने का ज्ञान

कर्म का सत्ता के सन्मुख आत्मा अपन बल की परीक्षा दो प्रकार में कर सकता है । प्रथम कर्म के सामने उभर कर विरोधी कर्म सत्ता को रगना, दूसरा प्रकार यह है कि जब जिस कर्म की सत्ता उदित हुई है तब उसी प्रवृत्ति करना कि आत्मा के प्रश्न पर सुख दुःख की भावना को अस्मित न होना देना । इन दोनों में प्रथम प्रकार मुख्य है । जाग्रत आत्मा सुगमता से इस प्रवृत्ति को सम्पादन कर सकता है । दूसरे प्रकार को विशेषतः ज्ञानी पुरुष ही व्यवहार में ला सकते हैं । इस नियम के अनुसार चलन पाले का आधार विशेषतः अन्तरणीय बल पर अवलम्बित है ।

प्रथम प्रकार जैसे शत्रु के सामने शत्रु पैरना । ऐसे अशुभ के सामने शुभ उपस्थित करने की सत्ता को चाण करना है । दूसरे प्रकार में पूरे जन्म में उचित कर्म को समभाव से-अग्रन्थ परिणाम में भाग कर ज्ञय करना है ।

कर्म का नियम अचल है । इसलिए परिणाम को निष्फल करने के लिए अन्य कार्य के करने का अवकाश रहता है । एक नियम के सामने दूसरा विरोधी नियम उपस्थित करने से दोनों विरुद्ध सत्तायें एक दूसरे के सघर्षण में मत्त हीन हो जाती हैं । इस दशा में आत्मा अपन आगे का मार्ग साफ कर लेता है ।

विम विम का मत्ता म एक परिणाम उत्पन्न होता है उम
 विरोधी परिणाम का प्रयत्न करने का ज्ञान विम मनुष्य को होता
 है वह मनुष्य इसका दुःख म धर सकता है । ऐसा विम
 सामग्री के ज्ञान न रहने से मनुष्य नियम की मत्ता का प्र
 रक्षता है ।

मनुष्य कम के सामने लड़ नहीं सकता पर मन्त्र नियम
 का ज्ञान प्राप्त कर के एक नियम के बल के सामने दूसरे नि
 का प्रयोग करके प्रथम नियम के बल को तोड़ सकता है । इस
 वह आत्मा अपना भारी भविष्य अपनी इच्छानुसार बना सकता
 है । अभ्यास और अनुभव से यह ज्ञान मिलता है ।

मन जड़ है । एक जड़ पदार्थ विम नियम के आधीन
 उमी नियम के आधीन मन है । जड़ द्रव्य का प्रत्येक आ
 काय कारण के नियम के आधीन है ।

इसमें मन का प्रत्येक परिवर्तन उससे पूर्वगामी काय के
 परिवर्तन के आधीन है । मनुष्य के अन्तःकरण में कई
 विचार और वासनाएँ उत्पन्न होती हैं । तब वहाँ यह
 चाहे कि यह पुरुषार्थी कर्मा के परिणाम हैं । विम
 सामग्री में से जा विचार
 मम में वह उत्पन्न है
 अतः तक आत्मा स्वतंत्र

अतः करणों के विकार रूपके उत्पन्न होनेकी, याग्य सामग्री का मिल जाने के अनन्तर उस विकारके सम्बन्धमें मनुष्य निर्म्पाय है और परतत्र है। मन परतत्र है यह उसके पूर्वक कारणक वश में है। इसमें जान सकते हैं कि जिनमें से जा उत्पन्न होना चाहिये उसका सम्बन्ध में हम सर्वथा निर्म्पाय हैं।

मन स्वतंत्र नहा पर आत्मा स्वतंत्र है। मनकी काम बाधाओं के कारण उत्पन्न हुई अध्या उदली हुई अस्थायी के साथ सम प्रकाश न मिलकर तटस्थ भावमें मनकी अस्थायीयों का साक्षी रहनेमें आत्मा बाधन में मुक्त होता है। यह काम बाधन काटन वाला प्रमोद्य शक्ति है इसका उपयोग करनेवाला अक्षकोटि का आत्मा फिर काय कारण के आधान नहीं रहता। यह शरीर की और उसमें रही हुई मनकी मागी प्रवृत्तिया का वश में रखकर आत्म रूपमें निरन्तर समभावमें स्थिर रहता है।

मन चाहे कुछ करे और किसी स्थान पर जाय तो भी उसका दृष्टा आत्मा मन्त्र सावधान रह सकता है। आत्मा जानता है कि मन, जिन स्थितियों के वश में होकर काम करता है वह उसका पूर्ण के कारणों की वजह से है और आत्मा उसमें फेरफार नहीं कर सकता, परन्तु यदि आत्मा उसमें सम पूर्वक न मिल तो मन आगे नहीं बढ़ सकता। इस आत्मा का मनका प्रवृत्तिके साथ मिलना या न मिलना उसीके आधान है।

आत्मा की स्वतंत्रता यही है कि वह प्रत्येक प्रयत्न में प्रयत्न विचार के गाढ़ आवश को भी यदि चाहे तो थोड़े ही समय में

दमन कर सकता है। यही उमकी सत्ता है। विकार के उदय व समय यदि आत्मा तटस्थ रहे तो उन्नि जमाणुओं के वहीं शिथिल होने व पाय फारण की परम्परा टट जाती है।

नवान कारण का उत्पन्न हाना जहाँ स हा वट हो जाता है। परन्तु जो शरीर तथा मनकी प्रवृत्ति व नाथ अनिमान को मिलाया जाय तो उस भावना का प्रवाह उढता है। इससे आत्म रस को पोषण मिलता है। इसलिये हम बलवार हैं। आत्मा के हित काग विचारों में रहना प्रत्येक समय ता विचार उत्पन्न होते हों उनम न मिलना और अपने आम विचार म न्द रहना यह हमारे पुरुपाथ का परम साध्य है और यह दाप अभ्यास से प्राप्त हाती है।

तापर्यं कि शरीर की या मन का किसी प्रकार की हलका स्थिति म आमत न होना, उम अरमथा का भाची जनकर रहना, प्रिय या अप्रिय मत्र प्रकार के भावा व उत्यके प्रति समान दृष्टि रखना उन्नि भावा म रम पूरक मिलनेमे तिन तिन भावा का पापण मिलता है यह पोषण वद हा जाता है।

अभिमान म मन जाप्रित रहता है, आत्मा न तिराटर पाकर भावा तुरन्त ही मरना पड़ता है। इस प्रकार मनर मन कारण एक व पीछे एक यथा समय उन्नि हाकर पापण व अभाव स मन्द होते हुए अन्तमें नाश हा जात हैं। एउ आत्मा मरम्यत्प का अनुभव करता है।

कर्म में कर्म को तोड़ना और द्रष्टा रहकर कर्म के बन्ने प्रवाह को रोकना, इन दो मार्गों में ज्ञानियों को दूसरा मार्ग ही पसन्द है। प्रथम उपाय शुभ बन्धना का हेतु है। दूसरा उपाय निर्जरा का कारण है। अशुभ कर्म में बन्धन के स्थानपर, प्रथम मार्ग में शुभ कर्म का बन्ध छाता है। यह परिणाम में हितकारी तो है परन्तु धान्तर में तो दूसरा मार्ग ही उपयोगी है।

आभा से मिले बिना किसी कामना या विचार की श्रेणी आगे नहीं बढ़ता। हम विम्वय कारक विचारों की उपेक्षा करना सोचना चाहिये। इस ज्ञान के स्थिर रहन में समझाव की उत्ति स्थिर बनी रहती है। कैसे हा मयाग क्या न हा उममें मन्त्री समाधान वाली स्थिति का स्थिर बन्ने की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये।

प्रकरण सातवा

पुरुषार्थ

कर्म के नियम को विशेष पूरक प्रयोग में लाने से हम निश्चित परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं। विचार के अनुसार ही चरित्र अथवा आचरण बनता है। किसी वस्तु की स्थिति को प्राप्त करने की प्रयत्न इच्छा आत्मा के लिये कर्म कर्म की स्थिति प्राप्त करने का हेतु उपस्थित करती है।

पूर्व कर्म, यह अपना इच्छा से पहल प्रयाग में लाया हुआ अपना बल है। इसके सम्मुख उसकी गति का विरोधी प्रवाह

रखने से उन दोनों के मघपण होने से उत्तमान प्रवाह निचल प्रवाह को अपना विशा म खावता है । एम पुम्पार्थ म कम का अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये । यदि पूर्व कम अनिष्ट हा तो उमका विराधी दशा म फेरन का पुम्पार्थ करा । कर्मों की रचना नियमा की रचना है । एर नियम र सम्मुख दूसर नियम का प्ररणा म नैस कि क्रोर क साथ क्षमा का मिलान स दाना गतिया क रर जान स उनका शुभाशुभ फल प्रकट होता हुआ रर जाता है ।

यदि जाय अविक्त समय तर एर हा विषय क चिंतन क परिणाम का निराकरण न कर सक ता एमम प्रचण्ड बल तैयार हो जाता है । उमर प्रबल प्रवाह का रोदन क लिय उस समय लगभग अशक्त मा हा जाता है । खाकि आत्मा इस समय चाह कितना हा प्रबल पुम्पार्थ कर तो भा एर समय म पूर्ण जन्म का मनवृत इइ इइ गक्षमा जामनाआ का उश म कर सक एमा बनना असम्भव है ।

इस प्रकार क कमा का निराचित्त अवश्य भोक्तव्य कहत हैं । एसा कम एर हा समय क पुम्पात्र म उश म नर्नी आ मरता । पर पुम्पाथ और भोग द्वारा धीरे धार नाश क्रिया ना मरता है । उमम विरुद्ध दशा म प्रयत्न करने म वह शिथिल अथवा पुम्पाथ साध्य बन मरता ह । पुम्पाथ भी एर प्रकार का भोग ही है ।

पुरुपाथ करके कर्मों का क्षय करता ऐसा ही है जैसा कि उनका भाग करके क्षय करना । भागने से कष्ट और परिश्रम होता है । पुरुपाथ स भा इतनी ही महनशीलता, धैर्य, उद्योग और शांति की आवश्यकता है । निर्वल जाव भाग द्वारा और वीरपुरुप पुरुपाथ द्वारा जिमा भी नियम को प्रयोग स लाकर पूर कर्म क्षय कर सकता है । पूर कर्म से पुरुपाथ मदा प्रबल है । कड ग्ध पुरुप कट रातों भंत्रिपती और समयी हाने हैं पर उनको पूर भय का रामनाथ अमुक विषया से प्राय निरल रना स्ती हैं । एसे प्रसंग पर पूर कर्म के स्वरूप तथा रल का समभन वाल विवेका मनुष्य उनकी और निरकार के भाग स नहीं रलिन जमा की दृष्टि स देखते हैं आर उनका सम्मति स्त हैं कि पूर के मस्कार क सामन अपना मत्ता को प्रयाग में लाकर उसका पराभव करो ! यदि ऐसा करन स उसका पुरुपाथ तत्काल राम स न आय ता सम-कना चाहिये कि जीव न इन रासनाथा का पूर समय में एम प्रेम स मेरन किया है तथा इमर इत्य में यह एसे मस्कार दृढ हा गय हैं कि उन पर रतमान राल की बुद्धि विवेक की शक्ति विनय नहीं प्राप्त कर सकता । उसका रतमान समय का विरक पवन प्रग की तरह एक निशा स गति करता है । तब उस मनुष्य का पूर समय का रामना शक्ति रूप विनली उमस विरद्ध रशा स उड जोर स काम करता है । इमलिये उम जीव का रतमान समय का ज्ञान विवेक और बुद्धि का उदय उमरे प्रबल सस्कार का नहीं दना सकता ।

प्रपने भ्रमान को समान म चाने रैसा ही घडा पहुँचे
 गमना भी अपेक्षा करता अपना जिज्ञासुफी और नत्व ज्ञान का
 मारण करता है । इस घासना क सम्बन्ध मे एक गालक
 क मतना भी समय और धैर्य नहा रम्य मरता ।

एक प्रसंग पर उमके आचरण पर हम नमा की दृष्टि रम्यता
 चान्थि । उसक थाडे से नेप या निर्मल अग का दरु कर उमके
 अद्भुत चरित्र का भी आनर न करना ठीक नहा । विश्व में कोइ
 भी मराङ्ग सम्पूर्ण नहीं । यद्यपि वह अपरा है तथापि अपनी
 पत्रति के माग पर है । एक निर्मल मनुष्या में पूण चरित्र की
 आशा कडों तरु हो मरती है ।

अमर के दोष का रम्य कर तुम्हे निराश न होना चाहिय ।
 अत्र भी अमरे सुधरने का अरमाश है यह दृष्टि रम्यती चाहिय ।
 मम दृष्टि म प्रत्येक प्रमग को देखो । तुम को कुर्मम का अरमाश
 नहीं मिला इसलिये तुम अभा तरु पत्रि हो । अत्रमर और
 अनुकूलता मे दोनों देव को मनुष्य और मनुष्य को राक्षस बना
 मती हैं । प्राचीन शास्त्रा म मेमे उहुत दण्ड आत हैं चोन्ड पूरु
 गारा मे उहुद न्यून ज्ञाना पुण्य भा जिमी प्रलोभन क वश म
 हाकर उहुत समय तरु धरु रहे । और ठोकरे लगत क पञ्चा
 ठिमान आकर अपना भूल सुधार लो ।

भूले हुए का तिरस्कार करना योग्य नहीं । मरका कारण यह
 है कि मम इसका दोष नहीं है । पूरु के प्रमद मरका मरका भूल

की निगा में शीघ्रता में ले जा रहे हैं । उनके सम्मुख डट कर खड़े रहना, यह पुण्यार्थी आत्मा के लिये भी कठिन तथा कभी असम्भव हो जाता है ।

दूसरी ओर विचार करने में मालूम होता है कि कई एक नीच, पूर्व कर्म के प्रबल स्फुरण के सहाने में अपनी स्वच्छन्दता को आगे नोकर स्वपर को ठगते हैं । इतक समान हमारा कोई घोर पाप नहीं । पुण्यार्थ को छोड़ कर पूर्व कर्म के स्फुरणों को आगे रखते हैं । अपने दावों का जोभा भूत काल की वासनाओं के साथे मढ़ते हैं । पर उनको इस पुण्यार्थ के ज्ञान की कुण्डिता का जला अवश्य मिलेगा ।

मनुष्या का मोक्ष कर्म का प्रकृति के सम्मुख सब सामर्थ्य में लड़ना चाहिये । यदि हममें पराभव भी हो तो भी यहाँ अपना निरलता के कारण अपना शेष नहीं है । इस युद्ध में अपने धैर्य को छुपाकर वासनाओं के प्रशमन ही अधमता की ओर लड़ जाना है । कर्मों का स्वाध्याय (पाठ) इतना तो अत्यन्त विद्यमान है कि चाह कैसे भी प्रबल प्रलोभन हों उनके साथ एक बार धैर्यता में युद्ध करने से ये शिथिल पड़ जाते हैं । यदि हम हार भी पायें तो भी हममें हमारी आधी जीत है । क्योंकि यह हार, आग को होने वाली जीत की सामग्री है । अपनी विजयी शक्ति की कमीटी जीत में नहीं पर प्रलोभना के सामने डट कर खड़ा रहने में है । नाति की कमीटी प्रलोभना के सामने प्रामाणिकता है । पवित्रता की कमीटी वासनाओं के

निमित्ता के मध्य में स्थिर रहन म है । अतसर, अनुकूलता और अक्रान्त म अपनी मक्षा प्रामाणिकता (ईमानगरी) को स्थिर रखन धाला हा वीर पुम्प है । सखा यागा रहा है ना बसती म रहकर जनसाम सी परिव्रता का स्थिर रख । पराक्रम का कर्मोटा, राग द्वेषादि अन्तराय शत्रुआ व नाश करन में है ।

असम यह स्पष्ट है कि जहाँ हम विना म भ्रष्टता करें वहाँ एक दम अपना सम्मति प्रगट करना अनुचित है । हम प्रसार पराजय पर पराजय पान बाल क बल का निर्णय करना चाहना नहीं । कैसा ही अधम आमा हा हमारा कर्तव्य यहा है कि उमक अन्याय का अन्धा करें । और उमका यथाथ मार्ग पर लान का प्रयत्न करें ।

अपन हृदय में महानुभूति अनुसम्पादिति विश्वप्रेम आदि उत्तम वृत्तियों के उत्पन्न करने और उनको काय रूप म परिणत करने का जहाँ अतसर मिल जहाँ उनको कर्तव्य रूप म लाना चाहिये । कारण यह है कि आत्मा की उन्नति, अन्य का उच्च वृत्तिया को प्रयोग म लान स हानी है । वृत्तिया को जहाँ कर्तव्यकार होन का प्रसंग मिलता हा जहाँ मन अपना अपना कम भागत हैं, एसी भूयतापूर्ण नीति तत्य का आलम्बन करके कर्तव्यदान बनना उचित नहीं ।

मेरा, ग्रापण, त्याग और उन्धुता द्वारा ही आत्मा का उर्ध्व गति का मार्ग खुलता है । प्रकृति चाहे किसा प्रकार काम

करती हो पर हमारा उम तो यही है कि हम दूसरे का दुःख जहाँ तक हो सके कम करने का प्रयत्न कर ।

प्रकरण श्रटावा ।

विचार और टच्छा के बलका उपयोग

मनुष्य जसा विचार करता है वैसा बनता है । एक हा प्रकारक तिरन्तर विचार म चरित्र बनता है । विचार की देय पडन के पीछे, न जानत हुए भी व विचार अन्त करण म आनाते हैं । इस नियम का यह अभिप्राय है कि तुम जैसा विचार करोगे वैसा बनोगे ।

तुमन अपन चरित्र म मद्गुण बढ़ाने हा और दुर्गुणों का नाश करना जाता दुगुणा क विरोधा मद्गुणों का चिन्तन करो । अभिमान और लाभ का दूर करन क लिय नम्रता तथा त्याग का चित्र अपन हृदय पर कपना रूप लखिनी मे लिखला । उसके चिन्तन म लग जाओ गुण का चिन्तन न कर सको ता उम गुणों धारण करन वाले किमा महापुरुष का चिन्तन करा । उमकी नम्रता, निरभिमानता मनोप और मयम्ब त्याग का अनुकरण करो ? अभिमान और लाभ के प्रबल कारणों क मध्य म हटना रखकर अडोल वृत्ति म रहो । महापुरुषा का चित्र तुम अपनी मानसिक दृष्टि के सामने रखडा करा और उमकी देखते रहो ?

निमित्ता के मध्य में स्थिर रहने में है। अक्सर अनुकूलता और
 अकालत में अपनी मथा प्रामाणिकता (ईमानदारी) का स्थिर
 रहने वाला हा धार पुरुष है। मथा यागी बहा है ना बमनी म
 रहकर जननाम मी परिवर्तन का स्थिर रहने। पराक्रम की
 रुमौटा, राग द्वेषादि अन्तर्गत शत्रुओं का नाश करने में है।

किस यह स्पष्ट है कि जहाँ हम किसी में भ्रष्टता देखें वहाँ
 एक क्षण अपनी सम्मति प्रकट करना अनुचित है। इस प्रकार
 परानय पर परानय पान जाल क जल का निर्णय करना शक्यता
 नहीं। केसा ही अधम आत्मा हा हमारा कर्तव्य यहाँ है कि
 हमारे कल्याण का ध्यान करें। और उनसे यथार्थ माग पर
 लान का प्रयत्न कर।

अपने ज्ञान में सहानुभूति अनुकम्पावृत्ति विश्वप्रद आदि
 उनमें वृत्तियाँ क उत्पन्न करने और उनका कार्य रूप में परिणत
 करने का जहाँ अक्सर मिले वहाँ उनसे कर्तव्य रूप में लाना
 चाहिये। कारण यह है कि आत्मा का उत्पत्ति, हृदय की उच्च
 वृत्तियाँ को प्रयोग में लाने में हाता है। वृत्तियाँ का जहाँ कर्त
 व्यापार ज्ञान का प्रसंग मिलता हो वहाँ सब अपना अपना काम
 भोगत हैं, ममी मूर्खतापूर्ण नीति तत्त्व का आलम्बन करके कर्त
 व्यवहान बनना उचित नहीं।

संसार, स्वार्पण, त्याग और बन्धुता द्वारा ही आत्मा का
 उर्ध्व गति का मार्ग खुलता है। प्रकृति चाह किसी प्रकार काम

करती हो पर हमारा सम ना यही है कि हम दूसरे का दुःख जहाँ तक हो सके कम करने का प्रयत्न करें।

प्रकृष्ण श्रुति ।

विचार और इच्छा के बलका उपयोग

मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा बनता है। एक ही प्रकार के निरन्तर विचार से चार्म बनता है। विचारों का टेरा पड़ने के पीछे, न जानते हुए भी वे विचार श्रुति करण से आताते हैं। इस नियम से कहा गया प्राय है कि तुम जैसा विचार करोगे वैसा बनोगे।

तुमने अनेक चार्म से मद्गुण ज्ञान हा और दुःखों का नाश करना ज्ञाना दुःखों का विराधी मद्गुणों का चिन्तन करा। अभिमान और लाभ का तर करन के लिये नम्रता तथा त्याग का चित्र छापन ज्ञान पर रूपना रूप लगिनी से लिखला। ज्ञान के ज्ञान से लग जाओ गुण का चिन्तन न कर सको ता ज्ञान गुणका ज्ञान करन वाल किमी महापुरुष का चिन्तन करा। ज्ञान नम्रता, निराभमानता सन्ताप और मर्मन्व त्याग का अनु करण करा ? अभिमान और लाभ के प्रजल कारणों के मध्य से ज्ञाना गवर्ण अडाल धृति से रहा। महापुरुष का चित्र तुम अपना मानासक इष्टि के सामने गड़ा करा और ज्ञाना ज्ञाने रहा ?

बाइबिल का ही अभ्यास में तुम अपने स्वभावम भाग परिवर्तन करोगे। जरा नर तुममें इन गुणों का समावेश पूरी करोगे। यह ज्ञान तब तक निरन्तर महापुरुष का ध्यान करत रहना। और इसका किसी प्रकार का रुकावट न होने दो। यह नियमित आचरण प्रयोग-इस अभ्यास के फल का उपयोगी अंग है और कम की मत्ता को तोड़ने का अमोघ शस्त्र है।

तुम्हें जिस गुण की आवश्यकता होवे उसका चित्र हृदय पर बना ला। उसका चिन्तन करा ? जैसे जैसे तुम्हारा प्रम इस गुण की ओर बढ़ेगा वैसे वैसे तुम गुणी बनोगे। इसमें स्पष्ट है कि चिन्तन से ही चरित्र बनता है।

वर्तमान दूषण भूतकाल के चिन्तन में परिष्कार रूप है और वर्तमान चिन्तनों से हममें फेरफार हो सकता है। पूर्व के कम के सामने उमम विरोधी प्रबल मन परिणाम को उमम समान रख कर उसका विनाश कर सकते हैं। हम सरल, परन्तु अमोघ नियम में बाइबिल मनुष्या का ही विश्वास है।

चिन्तन में अद्भुत शक्ति उत्पन्न करने का सामर्थ्य रहता है। आत्मा अपना अप्रगटित सत्ता का दृष्टि से परमात्मा का है और इस में ही यह परमात्म शक्ति बाहर आता है। मैं क्या हूँ ? कैसे नियमों के आधीन हूँ ? इन नियमों का अर्थ प्रकाश आचरण में लाने में स्वउन्नति साधी जा सकती है। इस ज्ञान से अपना उन्नति अति शीघ्रता में हो सकती है चरित्रावरण

कर्म का बल बड़ा तक है जहा तक उमको दूर करने का साधन हाथ मे नहीं है । एक परम योगी और दूसरा विपयी पामर जीव यह दोनों अपने विचारो के भ्रम म ही बनत हैं । मनुष्य इम विचार शक्ति को प्रिक पूरक क्रिया म लाना सीगरे तो उसकी मत्ता मे रहन वाला परमात्म म्वरूप थोडे समय में प्रगट हा नाना है, इममें कुछ भी मन्ह नहीं ।

प्रत्येक इच्छा इच्छा के विषय का प्राप्त कर लेती है । इच्छा और सकल्प बल इन दोनों म यह भेद है । इच्छा प्राद्य पत्ताथा में आमत्त होती है, उममें शुभाशुभ और याग्यायोग्य का प्रिक नहीं होता । सकल्प बल एकत्रित अनुभव क बल मे, याग्यायोग्य का निणय करके कल्याण क माग म प्रयतित करता है । एक प्रबल चरित्रवान पुष्प ओर कमरे निबल पामर जीव म इतना ही भेद है कि यह निर्बल आत्मा तुच्छ प्रलोभना स अपना निश्चित मार्ग छोड कर प्राद्य आरुपणा में फिमल जाता है । सबल आत्मा अपन अन्तरीय अनुभव सकल्प बल आर विनेर स निश्चित विय माग म आग्रह पूर्वक प्रवृत्त रहता है ।

निर्बल मनुष्य के उपर पूरा विश्वास नहीं रक्खा जा सकता और जिन कामा में प्रलाभन और आकषण विशेष हावहोता यह मनुष्य निस्सार हा है । परन्तु प्रबल सकल्पवान मनुष्य ऐसे सबल नियमा के मध्य म एक जैसा दृढ रहता है । प्रत्येक अच्छी या बुरी इच्छा अमुक प्रकार के कर्म को उत्पन्न करती है और उस

कर्म के परिपाक के समय में आत्मा को निश्चित फल मिलता है। यह नियम कम यावने में और कम तोड़ने में मनुष्य में उपयुक्त मान लेता है। मनुष्य को किसी प्रकार का इच्छा करना पले बड़े विप्रेर की आवश्यकता है। उसको मालूम नहीं है कि प्रबल इच्छा द्वारा, वह शक्ति को किस ओर लगा रहा। उसके विकार के समय वह इच्छा महा विद्रु रूप होकर मध्य गयी रहती है। प्रबल वामना वाली इच्छा कमर लिए वै संयोग उपस्थित किये गिना नहा रहती। उससे असाधारण पुष्प करवा कर वह इच्छा उमर इष्ट भाव का पूरा कर लेता परन्तु इमर प्राप्त होने के पश्चात् आत्मा का जो अस्थायी है वह ज्ञान शक्ति द्वारा अमर में महान रूप और पारताप उत्तरती है। यह इच्छित विषय की प्राप्ति आत्म विराम में मय होने के स्थान में उपरीत और विद्रुकारक होता है। यह मनुष्य भोग का एक कीड़ा ही बन जाता है।

यश, कार्ति और ग्याति की लालसा भी मनुष्य का पापना लेती है। बहुत से मनुष्य उमका गुण गाय लालसा बाहरी हो, और मय का ध्यान आत्मा का और आकापन हो, इच्छाय करता है पर उमका ज्ञान नहा जाना कि मम अभिप्राय कोमा उठाना कितना दुःख है।

यश की लालसा काल्प अन्य मनुष्या के अभिप्राय मान कर अपना स्वतन्त्रता न्याना पडती है। अपनी इच्छा नि

मझे अभिप्राय को त्वाकर लोग से यश स्वरीदने के लिये अपना प्यारा धन व्यय करना पड़ता है। कीर्ति रूपी भयकर पिशाच को स्थिर करने के लिये हर समय हानि उठानी पड़ती है अपने बढ़पन का घटा निरन्तर गले में बांधना पड़ता है। ऐसी इच्छा का फल भोगे बिना उमका छुटकारा नहीं होता।

सच्ची कीर्ति तो मनुष्य के सत्कर्मों के पीछे रहती है। उसके मत्कर्मों के पीछे वह स्वयमेव आता है। यह मत्कर्म किसी कीर्ति का प्राप्ति करने के लिये नहीं करने चाहिये। इस कीर्ति की इच्छा अपनी स्वतंत्रता के ऊपर अकुश रखती है। यह ठीक है कि उत्तम कार्य करने की इच्छा करो पर मत्कर्म कीर्ति प्राप्ति करने के लिये न करो। कीर्ति लागों निन्द्यामाली एक शक्तिनी है। उसकी कुछ निन्द्याये तुम्हारा गुण गाती हैं और दूसरी निन्द्या करता हैं। तुम अपनी कीर्ति के लिये किम किस को प्रसन्न कर सकत हो। हर एक का अभिप्राय एक समान हो जाय इसक लिये तुम्ह अपनी स्वतंत्रता सोनी ठीक नहीं। प्रियेक रहित इच्छा हानिकारक है। तुम्हारी प्रगति ऐसी नहा होनी चाहिये जो कि तुम्हें अधागति का भाग में हो जान वाला हो, किन्तु आत्माने अनन्त गुणों को प्राप्ति करने का मार्ग में प्रकाश रूप होनी चाहिये।

आगे उठने वाले मनुष्या का शुभ इच्छाया का त्याग नहीं करना चाहिये। मनुष्य को इच्छाओं का बल ही आगे बढ़ाता है। एक इच्छा के विषय की प्राप्ति होत ही दूसरी इच्छा से प्रसन्न होकर आगे चलता है। जहाँ आत्मा अपनी पिछली प्रगति को

शुद्धतर करना बन्द कर देता है वहाँ ही से इसका विनाश अर्थात्
अथ पतन आरम्भ हो जाता है। कारण यह है कि प्रवृत्ति का
मूल हेतु, आत्मा की पूर्णता प्रकट करना है। पूर्णता प्राप्त करने
में पहले इच्छा को त्यागना यह प्रगति के रोकने के समान है।
इससे यह बात स्पष्ट होती है कि तुम को प्रत्येक इच्छा से पूर्ण
बहुत विवेक से काम लेना चाहिये।

इच्छा के प्रबल शास्त्र का उपयोग अपने घात करने के लिये
नहीं, किन्तु रक्षा करने के लिये उचित है। इच्छा से उत्पन्न शुभाशुभ
कर्मों के अनुभव किये बिना जीव का दुःखकारा नहीं। निषय
लोलुप आत्मा, वसन्त की मधुमत्तिका की तरह एक पुष्प से
दूसरे और दूसरे से तीसरे पुष्प का रस चूमने के लिये भ्रमण
करता है। उमरा यह खबर नहीं कि इसका समुद्र वर स्वयं ही
है। यह पुष्प ता थोड़े समय के पश्चान् कुम्हलाकर भुग्न जायेंगे
इसलिये हे जीव ! यदि तू विवेकयुती बुद्धि का उपाय उपयोग
करेगा तो जीवन का अन्तिम मर्म और रहस्य समझ सकेगा।

प्रकरण नवमा

पवित्रता

पवित्रता के बिना किसी प्रकार भा मन्त्रा आत्म विकास नहीं
होता। आत्मा, मन वचन और शरीर के विकारा के वशवर्ती
बने किन्तु मन वचन शरीर आत्मा के आधान रहकर यथोचित

प्रवृत्ति कर सकें इसी का नाम पवित्रता है। आत्म-मार्गम आगे बढ़ने की इच्छा रखने वाले जीवों के लिये यह पवित्रता मुख्य साधन है।

सामान्य मनुष्या के जीवन बहुधा इन्द्रिया के आधीन रहते हैं वे इन्द्रिया के विषया म रमे रहते हैं। वे जहाँ जायँ उनकी ओर ही उनका ध्यान आकर्षित होता है। य विकार और तुच्छ इच्छाओं के बश में रहत हैं तथा परिणाम स्वरूप इष्टानिष्ट विषयों की प्राप्ति अप्राप्ति म विविध दुःखा का अनुभव करने हुए अनेक जन्मों के अनुभवा का साथ लेकर समार चक्र म घूमते रहते हैं। अनेक अच्छे या बुरे अनुभवा के अन्त म न्न मन का विकास होता है। जब वे मन में रमण करत हैं तब उन्हें इन्द्रिय जय मुख की अपेक्षा मानसिक मुख्य अधिक प्रिय लगता है। मन क विशेष अनुभवों के अन्त म उनको आत्मा का मुख्य और भी अधिक भविष्य होता है। तब मन के विकल्प जाल में घबरा कर यह गामीन हो जाता है।

इस आत्म मुख्य का प्राप्त करने के प्रसंग में, जीव को मन तथा इन्द्रिया ने पूर्वाभ्यास म जाँ तुच्छ मस्कारा का समग्र निया होता है उसके साथ युद्ध करना पड़ता है प्रबल इच्छा शक्ति के बल से, अन्तत इन वासनाओं का पराजय होता है और आत्मा विजय पाता है। इस युद्ध के प्रसंग में इन प्राचीन मस्कारों वाली वासनाओं तथा कामनाओं का कितना भारी बल मत्ता में सगृहीत है यह विचार म आता है। मन की शक्ति कितनी प्रबल है इसका

ज्ञान इस समय होता है। चित्त स्वरूपा का नष्ट हुआ समझता था, वह द्विष हुआ ये। नष्ट न थे। उसे अब पता लगता है कि चित्त लागणियों के आवेश को वह अपने आधान समझता था वह महज निमित्त पात ही वैसा प्रबल चोर में अकरमान प्रकट हो जाते हैं। उसका मन ज्ञान होता है कि इन वृत्तियों का नाश बहुत दीर्घ काल में होता है। मन तथा इन्द्रिया की परार्थानता से मुक्तना जो सामान्य बात नहीं।

इन्द्रियां तथा मन न राध समय से अमुक प्रकार का जा विरुद्ध गति प्राप्ति का है, जमना वेग चलन में नवीन वेग देना पड़ता है जम समय बहुत प्रबल लगाना पड़ता है। उच्छ्रद्धल मन तथा इन्द्रियों अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रवर्तते हैं। कायादि का प्राने का प्रयत्न करते हुए भा वे ऐसे विषम प्रसंग में, थाडामा निमित्त मिलते हैं प्रबल होकर जान की इच्छा के विरुद्ध प्रवर्त हो जाते हैं।

ऐसे मनुष्य स्वभाव को शुद्ध करने के लिए उमाह के मार्ग त्रिषरूपरूप काम करने की आवश्यकता है। त्रिषरीत गति का सुधारने का उपाय यह है कि इतने शुभ विचारों को मन में अकर्मित करो कि अशुभ विचारों को मन में रहने का स्थान ही न मिले।

इन्द्रिय के विचारों का मूल स्थान मन है। मन का किस शुभ विचार, पवित्र भाव और किमा मद्गुण के आधार में लगाया जावे और वह अभ्यास निरन्तर उमाह के साथ ही

काल तक करने में आये तब यह अवित्रता और अशुद्धि, पवित्रता के रूप में बदल सकती है। एम शुभ विचार यदि मन में अच्छी तरह परचित होत रह तो फिर अशुभ विचार का नवीन उत्पन्न होना बन्द हो जाता है। मन की नवीन पोषण न मिलने में पूर्व के सम्कार नष्ट हो जाते हैं या शुभ में परिवर्तित हो जाते हैं। यहाँ विशेष सावधानता यह रखनी चाहिये कि इममें नीच सगति और विपरीत संयोगों में, जाय का बहुत दूर रहना चाहिये। एक मनुष्य कामवासना के दुर्गुणों के उपर विजय पाने के लिए प्रयत्न करता है। यह समझता है कि अब ऐसा विचार नहीं उठत अर्थात् वामना मर गई है। परन्तु एकात्मता में कामवासनानुसूल संयोग मिलत है उन वामनाओं का उत्पन्न होता है और मन के उपर नियम नही रहता।

उस समय एम मालूम होता है कि ओहो! यह क्या आश्चर्य हुआ कि आज तक के परिश्रम पर पानी फिर गया। मुझे थोड़ा भी लाभ न हुआ। बात भी ठीक है, अग्नि की एक ही चिनगारी जहाँ अग्नि का जलाने का गुण रखता है, वहाँ उसमें घाम के घाम जलाने की भी मत्ता है। एम ही दुर्गुण का धीज भी यदि मत्ता में पडा है तो उसका तनिक भी विश्वास न करना चाहिये।

जब तक अपनी वासना को प्रत्येक प्रसंग पर नाश कर सकने अथवा रूपान्तर में बदलने की प्रबल शक्ति अपने में प्रकट

न हो तब तक यथा तथा ऐसे विषयों की वासना को पोषण तथा उत्तेजन करने वाले द्रव्यों से दूर रहना चाहिये इसमें ही लाभ है। जो जीव विषय वासना को हटाना चाहते हैं उनको काम के उत्तेजक नाचल, कथा, शृंगार रस पूर्ण वाता विषय रस के पोषक नाटक और विषयों को जागृत करने वाले मनुष्यों के सहवास से दूर रहना चाहिये। गन्धम आहार कम करना चाहिये।

स्त्री पुण्या के सहवाम वाले स्थान में और उनसे समीप न रहना चाहिये और न इस प्रकार का वातालाप करो जैसे ऐसे दृश्या को ध्यान से न लो। पूर के विषया के अनुभव को स्मरण में न लाओ और विषयों के उत्तेजक पदार्थों का भाग उपभोग त्यागो।

मनुष्यों की मनोवृत्तियों हर समय एक समान नहीं रहती। तब नीच वृत्तियों का बल कम होता है तब उच्च वृत्तियों का उत्पन्न करने का काम सुगम होता है। उस प्रसंग के प्रवृत्त ही और नीच वृत्तियाँ की प्रवृत्तता का उदय होते ही उन वृत्तियाँ के पोषक समागमा के मिलते ही, मनुष्य अपने मन की स्थिरता और स्वाधानता को बैठता है। जैसे प्रसंग पर इष्ट देव के स्मरण करने, पवित्र पुण्यो को याद करने, उनके मन्त्राल का प्रवृत्त और पवित्र चित्र हृदय में लाने से और उस स्थान का त्याग करके किसी मत्पुरुष के समागम में जान से उन भावनाओं का प्रवाह बदल जाता है। तुच्छ वृत्तियों का बल कम हो जाता है और मन की निर्मलता को पोषण मिलन लगता है।

यदि वासनाओं के ऊपर विजय पाना हो तो अपवित्र विचार उत्पन्न करने और ऐसे सहवास प्राप्त करने में किन किन दुःखों की सम्भावना रही हुई है इसका भली प्रकार विचार करो। जब जब ऐसी तुच्छ भावनाएँ उठने लगें तब तब तत्काल मन को उन विचारों की विरुद्ध निशा म फिरा देना चाहिये और उसमें अलग जाति के विचार करने का आरम्भ करना चाहिये। ऐसे प्रसंग पर हममें अधिक लाभदायक कोई दूसरा मार्ग नहीं।

जहाँ पवित्रता है वहाँ ही आत्मिकजल प्रकट होता है। जो मनुष्य, शरीर मन और नीति में कितना निरल है उतनी ही उसके ऊपर तुच्छ स्वभाव की मत्ता राज्य करती है।

पवित्रता ही आत्मिक बल, अमरत्व, प्रकाश, शांति और अनन्त शक्तियों का भाग है।

जहाँ पवित्रता रहती है वहाँ प्रभुता भी रहती है। मनुष्या, तुम पवित्र बनो। यदि पवित्र न बनोगे तो दुःख महन करने के लिये कटिबद्ध होना होगा।

प्रकरण दसवा

“त्याग”

मनुष्य जहाँ तक इन्द्रिया को शान्त करता है और मन को पवित्र तथा स्थिर करता है वहाँ तक वह शुद्ध आत्माका अनुभव कर सकता है ॥ १ ॥

शुभाशुभ कर्म करने में जीव उमकी मत्ता में स अमुक शरीर के आकार को धारण करता है। उममें जीवन प्रकट होता है और शरीरों का नाश होने में नयीन नयीन शरीर ग्रहण करके अनन्य अनुभवा के साथ जीवन विनाम को पाता जाता है ॥ २ ॥

जाय प्रकृति में अवात् पुद्गल में प्रकट होता है। अपने ममीप के पुद्गला को आरंभित करता है और नन्से आकार रचता है। जीवन के कर्त्तव्य करता हुआ वह शरीर धिमता है। उसमें परमाणु विग्रह जात हैं। उमके न्यान पर न्यान परमाणु ग्रहण करके, जाय बार बार नयीन शरीर रचना है।

आकार घिसता है न्यान परमाणु उसमें प्रवेश करते हैं। एम बार बार पुद्गल ग्रहण करते नयीन शरीर रचन में और उसका स्थिर रखने में परमाणुआ का उपयोग करके जायन परम्परा आग बढ़ता है। न्यान परमाणु लिय विना आकार दीप समय तक स्थिर नहीं रह सकता। प्रवृत्ति के मार्ग में परि वतन करना और निज का बनाना यह अपना विकास माता जाता है।

निवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ते समय उमके प्रतिकूल अनुभव होता है। जीवन, ग्रहण करने से नहीं किन्तु त्याग में स्थिर रह सकता है। परस्पर त्याग और ग्रहण करने में, तथा परस्पर के आधार के नियम को स्वीकार करने में सदैव जीव, जायन पूरा करते हैं अर्थात् आस्तिरत्व रखते हैं।

इस आकार वाले देहधारी समाज में हम अकल नहीं रह सकते। दूसरे पुद्गल परमाणु ग्रहण करके धनम्पति आदि शरीरों का उपभोग करके अणी हुए बिना हम अपने शरीर को स्थिर नहीं रख सकते। इस ऋण को हमने, ग्रहण की हुई किसी भी वस्तुका, दूसरे जीवा का उचान के लिये, उनका भला करने के लिये, अथवा स्थिर रखने के लिये भोग करके उतारना है।

इसका त्याग किये बिना अज्ञान भाग किये बिना मनुष्य इस माकार-देह धारा स्थिर मनवा रह सकता। इस मार्ग त्रिनाम का मूल त्याग में है। इस त्याग के परिणाम में सब शुभ वस्तुय प्राप्त होता है ज्ञान का अभ्यास करके, गुरु में ज्ञान लेकर हमका हम त्याग भी कर सकते हैं। दूसरों को हमका लाभ पहुँचा सकते हैं और इसी प्रकार त्याग करके हम आगे बढ़ सकते हैं।

दूसरा की सहायता करने तथा उन्नत करने में जो जो काम और त्याग करने पड़ते हैं उन उन काया को छोड़ कर शेष सब कामों में जोर अपने आपको बन्धन में डालता है। कर्म के फल की इच्छा मनुष्या का कर्म के बन्धन में बाँधती है। यदि मन बन्धना में मुक्त रहना है तो कर्मा के फल का भाग देना मीखा।

सत्कार्य के फल का उपभोग दूसरों का सहायता के लिये करो। उस सहायता के फल के बदले की धारा किये बिना परमार्थ के लिये कार्य करो। कर्म फल त्यागने में नवीन कर्मों में बन्ध नहीं होता। आत्मा की ऐसी निर्लेप अवस्था

पूर्ण कर्मों की निर्भरा होकर ये नष्ट हो जाते हैं और ऐसा होने से आत्मा अपने मनुष्यरूप में प्रकाशित हो जाता है।

प्रवृत्ति मार्ग की जहाँ समाप्ति होती है और अपने आत्मा की ओर आना होता है वहाँ से ही निवृत्ति मार्ग का आरम्भ होता है।

इस निवृत्ति मार्ग में प्रवेश करते समय सब वस्तुओं का और उनकी आत्मा का त्याग करना पड़ता है। उस समय चाप का बहुत दुःख होता है। कारण यह कि निवृत्ति के मार्ग की शक्ति का आनन्द अभी उसे मिला नहीं और प्रवृत्ति का त्याग करना पड़ता है। अतः इस निराधार मार्ग पर चलना कठिन प्रतीत होता है। तो भी हे आत्मन् ! तू इस समय घबरा नहा। शास्त्रात तत्त्व के साथ सम्बन्ध करने और उसको प्रकट करने के लिये तुम्हें क्षणिक बन्धुओं को त्यागना चाहिये। इन क्षणिक वस्तुओं का सम्बन्ध छोड़ना चाहिये। इस स्थिति में आये बिना किसी दूसरे तट पर पहुँच नहीं सकते। दूसरे तट पर पहुँचने के पश्चात् तुम्हें यह जीवन आनन्दमय प्रतीत होगा।

जो अपना व्यावहारिक जीवन चाहते हैं वे आत्मिक जीवन खोजते हैं। और जो इस व्यावहारिक जीवन का त्याग करते हैं वे ही आत्मा के अनन्त जीवन में स्थान पाने के योग्य होते हैं।

जहाँ तक इन तुच्छ पदार्थों के साथ सम्बन्ध न छोड़े वहाँ तक उच्च जीवन का अनुभव कभी नहीं हो सकता। प्रवृत्ति जन्य अर्द्ध पौष्टिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के मध्य

म कोई दूसरा मार्ग नहीं। इसके मध्य में पड़े हुये माया जाल को पार करना चाहिये। यहाँ तुम्हें अपने आप पर ही आधार रखना पड़ेगा।

मायायी आकार वाले सारे आधार छोड़ देने पड़ेंगे। इस समय सब कुछ शून्य और निराधार सा होगा। तब शान्त जीवन वाले शून्य स्थान के बिना दूसरा कोई स्थान देखने में नहीं आयगा। तब ही हम जीवन की शून्यता में स शाश्वत प्रभु प्रकट होंगे।

जिस निम्नने इस विनश्वर विश्व के यह प्रकृतिमय माया जाल को मीटियों को पार करने का प्रयत्न किया है वह ही परम शान्त अनन्त और अविचल स्थान पर आकर स्थिरता से रहते हैं।

जो भूतकाल में आत्मिक-जीवन की ऐसी स्थिति में पहुँचे थे उन मनो मेसा ही अनुभव हुआ था। नेहाति के सग लगी हुई आकार वाली हलकी वासनाया, भावनाया का त्याग किये बिना कभी भी आत्म-ज्योति प्रकट नहीं होनी।

तुच्छ स्वभाव को जला देना ही चाहिये। यह काम स्वत करने का है। स्वय ही ज्ञानरूप अग्नि को प्रदीप्त कर उमम इमका होम कर देना चाहिये।

इस जड़ वस्तु की आसक्ति वाले वासनामय जीवन का त्याग करो। सर्वस्व का त्याग करने में जहाँ तक तुमको भालूम हो वहाँ तक कोई भी वस्तु बची न रहे। आत्मा के उपर पूर्ण विश्वास

रखो ? इस सर्वस्य त्याग न, अनेक जीवों को अनन्त जीवन म
मिला दिया है ।

जीवन लेनेमें नहीं पर त्यागन में है । स्वामित्व प्राप्त करन
म नहा किन्तु अपने पास जो कुछ भा हा उसके से देने म ही पूर्ण
चाहते हैं । अर्द्धा ग्या ' निव्य जीवन की पृथक्ता प्राप्त करने क
लिय सर्वस्य त्याग हा एक मार्ग है ।

शरीर की मरणा है आत्मा का मरणादा नहीं, उमलिये शरीर
प्राण करके जावित है और आत्मा त्याग करके चरित है । इस
निय चितना मायावी आदृतिषा का आसक्ति स रहित होंग
उतनी दिव्य पूणना अपन अन्दर प्रगट होगी । निवृत्ति मार्ग का
मुख्य लक्षण त्याग है । पहल्य करना यह उन जह आदृतिषा म
बने हुए शरीर में बार बार ध्यान जाने का लक्षण है । दते रहो
को मे ही जा सकत हा । निवृत्ति मार्ग में त्याग हा महायक भूमा
धनकर आत्मा का आगे बढाना है जहाँ तक इस शरीर क साथ
पटना मानकर चाहे उमके साथ लिपट रहा है वग तर त्याग
करन म जार को भय और उद्वेग होता है । चरुं तक ही त्याग
दुःख रूप मालूम होता है । परन्तु जब विविध आभाग म पड़
हुए आत्मा का ग्यन, अनुभव करन का यह जीय प्रयत्न करता
है तब त्याग हा आनन्द रूप ज्ञान होता है । त्याग म ही आनन्द
का महा सरमता है ।

अध्यात्म जीवत का प्रहाग सगुभर सा इस जीय क अनु
भव में आये तो इस, बार-बार बदलत हुए संसार का रहस्य

समझर्म आनाय । और फिर जगत को यह 'अमूल्य' वस्तु ममता है उसकी अमरता समझनी भी कठिन न होगी ।

जा मनुष्य, आमार म जीना है वह क्षण क्षण में मरता है क्योंकि आकार क्षण क्षण म थलता है । इसलिये ही वह मनुष्य मरणाधीन है । जा मनुष्य आत्मा में जाता है वह अमर हाता है । क्योंकि यही सदा जीवन है ।

इम जीवन को स्थिर रखने क लिय हलक स्वभाव वाली वासनाओं की उपेक्षा करा । इनका सुनना भी मन्द करो । तब तक आत्मिक जावन म जीना सोना तब तक इसी प्रकार जीवन यतीत करने का प्रण करो । आत्मिक जीवन नित्य प्रकट होता रहे इसके लिये, हलके तुच्छ मायावा पदार्था का त्याग करा । यही मुमुक्षु का जीवन है । स्वार्थ को मरथा भूल जाओ ? स्वार्थ त्याग तुम्हारा स्वाभाविक जीवन बन जाय इसके लिए छोटे म छोटे स्वार्थ त्याग से आरम्भ कर मरम्व त्याग की अन्तिम चोटी तक पहुँच जाओ । एक हाथ म सफ़्तप रूपी बल का तथोडा लो दृमरे में विचार रूपी छैणी पकड कर जीवन मूर्ति के कारीगर बनो ?

तब कारीगर पत्थर में रहा हुआ मूर्ति को निकालने क लिए अपने हथौडे और छैनी से (जो इसम विघ्न और म्कावट हाती है उनको निकाल कर बाहर फेंक कर) मूर्ति को बाहर निकालता है, जैसे ही तहा तक तुम्हारे अन्दर रहा हुआ प्रभु खेगने म न आये वहाँ तक उसक आरण करने वाली शरीर तथा

धूल रूपी भावनाओं का बाहर निकाल दो। ऐसा करने में इस मनुष्य जीवन में स दिव्य प्रभु सुन्दर रूप में प्रगट होंगे ॥

प्रकरण ग्यारहवा

दिशा का परिवर्तन करो

बन्धन से मुक्त होने के लिये ज्ञानना आवश्यकता है। किसी तरह भी हो पर तुम बंधे हुए हो। इस बंधन का कारण समझो। फिर बन्धन तोड़ने का साधन तैयार करके उस पूरे बल से तोड़ने का प्रयत्न करो।

जीवको धनादि सब कमा सन्तान नहीं आया। इसका कारण यह है कि जिस वस्तु का वह समझ करना चाहता है उस वस्तु के स्वभाव में अपूर्णता है। जिसमें पूर्णता ही है उसे आत्मप्रकाश के प्रकट होने से ही सन्तोष या शांति मिलती। अब तक जीव का जीवन जड़ प्रकृति के अनुसार ही था। उसको अब आत्मा के अनुसार बचनाओ? जीव ने अभी तक इस भौतिक माया का अपने मृत्यु में मृत्यु स्थान लिया हुआ था, अब आत्मा को हृदय में मृत्यु स्थान दो। अपने काय की दिशा बदलो और उन महायकों का परिवर्तन करो माया के लिये तूने माया का ही मूल्य दिया है अब आत्मा के लिये आत्मपरायण बाल शुद्ध उपयोग का मूल्य दो। अपने जीवन के रोम रोम में और क्षण क्षण में उपयोग को स्थान दो। इस मायावी जगत में और आत्मा के शुद्ध

स्वरूप में भूमि आकाश का अन्तर है। प्रकाश और अन्धका जैसा अन्तर है। छोटी लडकिया अपने मट्टा के घर बनाकर गुड्डे गुड्डियों के विवाह का खेल खेलती हैं इतनी ही कीमत इस विरम का माया की है। तुम्हारी सगृहीत वस्तुआ का इससे अधिक मूल्य नहीं हो सकता।

अपना दृष्टिकोण बदलो ? इससे तुम जो कुछ और भी मालूम होगा। यह विश्व जो तुमको अनुभूत प्रतीत होना है उसका असा-रता का तुम्हें ज्ञान हो जायगा। आत्मा ही तुम्हारे भूख मिटायगा अर्थात् सदा शांति देगा। इन्द्रिया के रिपयों में सन्तोष नहीं होगा। ये अन्त में विरम मालूम पड़ेंगे। इनका आनन्द शोक के रूपमें बदल जायगा। रिपया में आसक्त रहने वाले मनुष्या को दैरान होते, दुःख सहते, निन्दा पाते, नरिद्रता भोगत और निराश होत देखकर तुम इसमें कुछ पाठ सीखो तो अच्छा है। तुम अपना मार्ग बदलो ठीक है अन्यथा ठीकर खाकर पाठ सीखना पड़ेगा। रिपयों की क्षणिक रमणना इनके स्वभोग के जाल होते हुए दुःख या अनुभव तथा इनमें से अन्यान्य क्षण में प्रगट होती हुई दुःख की लालमात्रा पर विचार करो ? आ अनन्त शक्तिमान् आत्मा ! अब तू अपने स्वरूप की तर्फ जापिम लौट ? प्रवृत्ति भाग से निवृत्ति भाग के मन्दिर की तर्फ आ। धर्म तो मही बड़ा शांति आनन्द, प्रेम, ज्ञान और अनन्त जापन आदि कैसी सुन्दर साम-प्रिया हैं। ऐसा होते हुए तू किसलिये बाहर भटकता है। बात

मन्त्र है। दुःख सहन किया बिना सुख नहीं मिलता और न दुःख बिना सुख का अनुभव होता है। दुःख बिना सचे मार्ग पर नहीं चल सकते। दुःख के बाद मिला हुआ सुख विशेष रमणमय होता है। अनुभव में और स्वयं अपने उपाग में मिला हुआ भाग बहुत ही अमूल्य मालूम होता है। दुःख के बिना सुख की कामत नहीं मालूम होता। तपस के बिना शीलता का भान नहीं होता। आत्मत्व ! ता राज्ञ रिपया मायाया माधना से व्याकुल हो गया होता अन्तरीय भावना का तप वापिस आ ? निमममय य मायिक धनुष तुम्हें आनन्द बना वन्द करेंगी उमी समय तर लिये अन्तरीय आत्म द्वार खुल जायग और प्रभु दर्शन का प्रकाश आत्मा का जगमगाता ज्योति तर हृदय में प्रगट होने लगेगा। यह प्रभु का पन्ना है इस आर चलना आरम्भ कर ? यना प्रभु के मन्त्र का भाग है।

प्रभु बाहर किमा स्थान पर नहीं बैठे व ता तर सचे आत्म भाव में विगनमान हैं। तेरे हृदय में ही प्रगट हाग। तेरे पास ही हैं। उन्नुत वह तो नू हा है। एमा समय कर स्वस्वरूप में रहते हुए नू जीवन को व्यतीत करन का निश्चय कर ?

यह अमूल्य अवसर न सोचना। अनान रात्री धीन गड है आत्म प्रकाश का त्रास शुरू हो गया है। अन्त्यादय के पाठ मूर्ख का उपाय होता है। अन्त अन्तर्ज्ञ स्वाला ? इस प्रकाश पर निद्रा में कब तक पड़ा रहेगा।

तुम्हारा अतः करण जिस काम का निषेध करे वह न करो ?
 “इस मार्ग पर मत चलना” इस प्रकार अन्तःकरण से आती हुई
 आज्ञा को जीवित प्रभु का आज्ञा ममता। उसका करने पर
 चलो। अपनी इष्टि को विशाल बनाओ। इस मायावी मार्ग
 तथा प्रभु मार्ग में जो दीवार खड़ी है उसको तोड़ दो और उसको
 पार करके आगे चले जाओ।

ओ मुमाक्षिर ! चाहे जिसनी ही कठिनाई क्यों न आए तो
 भी तू इन मायावी विषयों के त्रिपमिश्रित मधुर रस को छाड़दे।
 अपनी विश्व व्यापी इच्छाओं का त्याग कर।

मनः स बन्धन साहस। इस मायावी नीवार के पीछे ही
 सीधा रास्ता है। वहाँ से तुम्हारे आगे बढ़ने का सरल मार्ग
 प्रभुद्वारा का और जाता है। तू इस नीवार को उल्लंघन किये बिना
 आगे नहीं जा सकगा। कई एक जीव यहाँ आकर रुक जाते हैं।
 कई जाते तो यहाँ से अपनी आगे बढ़ने की असमर्थता जानकर
 पाद लौटे आते हैं। परन्तु घबरा मत। अपने विचारों को शुद्ध
 और दृढ़ बना। मायावी विचारों को सफरता-मिलावट-का
 दूर कर।

यह हृदय निश्चय करो कि ‘मैं अनन्त शक्तिमान् आत्मा हूँ।
 सारे विश्व को हिता देने का मुझमें बल है। माया दूर होता मुझे
 मार्ग मिलना ही चाहिये। इन विचारों में लवलीन हो, दूसरे
 विचारों को भूल जा। स्थिरता बढ़ा फिर देखेगा कि स्वार्थी
 मायावी अज्ञानता का गढ़ हिलने लगेगा। यह गिरा, यह गिरा,
 ५

अर ! सचमुच टूट ही गया । अब मार्ग सीधा और विशाल जाया है । अगड प्रयाण पर अग्रमत्त होकर आगे बढ़ । अरे दूसरो के नीचे व्यग्रहारा का तिरस्कार क्यों करता है ? इसी समय अन्तर से ध्वनि प्रगट होता है कि यह तो विघ्न रूप है । जाग ! इसकी उपेक्षा कर ! इसकी सत्ता में स्थित प्रभु अध्यात पूर्णात्मा में दृष्टि लगा । ऐसा करने से गुणानुगम प्रकट होगा । यह दृष्टि भूलकर आत्माकार वृत्ति होगा । अग्र मयोग बदलन लग । विचार रूपान्तर में प्रगट होने लग । तिरस्कार वृत्ति दूर हुई । प्रेम, सच्चाप्रम आत्मभाव प्रगट होने लगा ।

श्री प्रभु मार्ग के पथिक ! अभां आगे चल । प्रतिदूल सयाग आते हैं तो उनको स्नादुल बनाता रह ? विचार बदलन से प्रतिदूल मयोग भी मुखदायी और अनुदूल मालम होते हैं । इससे तुम्हारा आंतरिक बल विशेष पंगा । निर्मलता दूर होगी । अनन्त शक्तिमान आत्मा में निर्मलता का स्थान नहीं है ।

आत्मीरूप परमात्मा को देख ? इस प्रभु के अनुदूल तू अपना व्यग्रहार कर । अग्र में प्रभु के प्रकाश जागृत प्रबोध — सा प्रगट कर । इस प्रकाश के तेज में काम वासना का धूती का खोचर निकाल और निरिक्लपक ध्यान की ज्वाला में जलाकर भस्म कर दे । विश्र का तप प्रेम प्रगट करता रह ! इसमें सारा विश्र, भयानक अटवी रूप से बदल कर नन्दन बन बन जायगा ।

प्रकरण बारहवा विचार शक्ति

वाप्य भाप और त्रिजली का शक्ति से जो महान कार्य हम समय शीघ्रता और सुगमता से हो रहे हैं उन से भा महान कार्य विचार शक्ति से हो सकते हैं। नैम त्रिजली और वाप्य को एक यत्र में लगान की आवश्यकता है उसे ही विचार शक्ति को भा अमुक मयादा व आधार से नियमित करने की आवश्यकता है तभी वह शक्ति-वाहर कार्य कर सकती है।

जन्म परम्परा से घुमान वाला विचार है। ऐसे ही जन्म का नाश भी विचारों से ही हो सकता है। यह विचार पवित्र और उत्तम होने चाहिये। जैसा मनुष्य चाहे व तुल्य कोई जीवन जन्म उसे ही मन से विशेष कोई उत्तम साधन नहीं। परन्तु इस मन के प्रयोग का ज्ञान ठीक होना चाहिये। मनुष्यों के भविष्य का आधार त्रिजली मन पर ही अवलम्बित है।

जैसे तमाम मिलें (मशानें) वाप्य भाप से चलती हैं ऐसे ही प्रत्येक कार्य चलाने वाले विचार हैं। विचार जड़ प्रकृति पर भी प्रभाव डालने हैं विचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाये जा सकते हैं।

जड़ प्रकृति रूप रहे हुए मूढम अणु विचार से वासित होकर एक दूसरे से वासित करते हैं। इस प्रकार परम्परा से मैन्डों कोमों पर रह हुए जीवा पर प्रभाव पड़ सकता है।

त्रिष्व सं प्रवाहा पदाय वायु के अणु और इससे भी विशेष सूक्ष्म वह प्रकार के जो अणु प्रमाणु हैं इन अणुओं में विचार गुजर कर, उनका अपन जैसा बनाकर दूर पर पहुँचा सकते हैं। इन विचारों का भला या बुरा प्रभाव चारों पर पड़ता है। विचार मन के अन्दर आन्दोलन रूप है। हम आत्मज्ञान के आगे पीछे आई हुई सूक्ष्म प्रकृति के परमाणुओं का चलायमान करने में चारों पर प्रभाव पड़ता है।

विचारा और वाप्य स तो धनी पुरुष का लाभ उठा सकते हैं पर विचार शक्ति, गरीब तथा अनाथ प्रकृति के आर्धन है। इसका नियमों को समझ कर उपयोग में लाकर लाभ उठाया जा सकता है।

विचार आन्दोलन को उत्पन्न करत हैं, इसमें उनका आकृतियों बनी दिग्गद् देता हैं। मनुष्यों के जैसे विचार हा तथा उनमें जैसी वासनायें और भावनायें हों जैसे हा आन्दोलन मन के अन्दर उत्पन्न हात हैं। और अपने ही बल से हममें गति प्रगट होती हैं।

स्वाधमय वासनामय तुच्छ विचारों से हल्की गति मन में प्रगट होती है। पर जो उत्तम विचारों का विचार हो तो ऊँचे प्रकार का मानसिक प्रकृति में आन्दोलन उत्पन्न होता है। जैसे विचार और वासनायें हा वही प्रकार का मन का चित्र बनता है। हल्का मन आध्यात्मिक प्रति में विघ्नरूप है। इसको सुधारने के लिए अशुभ विचारों को करने का स्वभाव छोड़कर मन विपरीत, शुभ विचारों को करने का स्वभाव बालना चाहिये। प्रारम्भ में

यह वाय अवरय कठिन प्रतीत होता है क्योंकि मन के परमाणु अशुभ विचारों के बन गये हैं। मन अशुभ विचारों से भरा हुआ है। और धार धार अशुभ परमाणुओं को प्रकट कर रहा है तब तक इन परमाणुओं को अलग न किया जाय तब तक शुभ तथा अशुभ परमाणुओं में युद्ध चलता रहेगा।

जैसे जैसे शुभ विचारों को मन में प्रकट करने जायेंगे जैसे जैसे अशुभ विचार उत्पन्न करने वाले परमाणु कम होत जायेंगे। और उनके स्थान पर शुभ विचारों के अनुकूल परमाणु बनते जायेंगे। निम्न शुभ विचारों का प्रकट करने वाला मनायल घटि पाता है। शुद्ध परमाणुओं से मानसिक बल बढ़न ही अशुभ मन का पराजय होगा।

मन में अन्ध प्रकार के आन्दोलन उत्पन्न करने की देय पडन के बाद सुगमता में उत्तम आन्दोलन उत्पन्न कर सकेंगे। क्योंकि यदि एक धार विचारों को इस मार्ग पर आन जाने का देय पड जाय ता फिर इस मार्ग पर चलने का काम विचारों को सुलभ हो जाता है। हमारा उद्देश्य यह है परमात्मा का नाम स्मरण करने के प्रभाव से मन के लिए यह वाय सुगम होजायगा। यदि इसक विपरीत, दूसरे के दोष देखन अवगुण बालने का देय मन में पड जाय तो दूसरा के गुण देखन का काम कठिन मालूम होगा। मन के दुर विचारों को दूर करने का उपाय एक यह भी है कि मन में ऐसे विचारों का उत्पन्न न हाने दें। परन्तु यह मार्ग जिसे परम-वैरागी के लिए ही अनुकूल है निम्न विषयों के विविध

प्रकार की वासनाओं और इच्छाओं का परित्याग किया है।
और जिस नाच प्रकृतिया से काइ मन्त्र र रक्ष।

परन्तु तिन में ऐसा विषय व्यापी रूप प्रगट नहीं हुआ।
उन्हो नेमे हलक विचारों के स्थान पर मनक विरुद्ध स्वभाव
गल शुभ विचारों को मन में स्थान देना चाहिए और वार बार
ऐसे विचारों की पुनरावृत्ति करत रहना चाहिए। इस प्रकार
अशुभ विचार मृत नष्ट हो जायगा। तिन तिन वृत्तियों के नाश
करने की इच्छा हो उन उन वृत्तियों के विरुद्ध गुणवाली वृत्तियों
उत्पन्न करते रहा। जैसे राग के वल्ले जराग्य, क्रोध के वल्ले
क्षमा, द्वेष के स्थान पर प्रेम, अभिमान के स्थान पर नम्रता
और लोभ के स्थान पर सन्तोष इत्यादि विरुद्ध विचारों के
वर्धना करत रहे। इसमें पूर्ववर्ती हलक विचार नष्ट होंगे
मन-सत्तम विचारों के आन्दोलनों का मुख्य स्थान बनगा। जैसे
जिल से सामन आता हुआ गाला बाहर रारा जाता है तैसे
शुभ परमाणुओं में बना हुआ मन अशुभ परमाणुओं को
रोक सकेगा।

विचार का आवृत्तिय बन्धती हैं और उनको मनसे पोषण
मिलता है। मन में उत्पन्न हुए आंदोलन में मन के अनुष्ण
पुत्र गनिमान होता है। उससे दृग्गुरु पुन की अलग अलग
आवृत्तियाँ बनती हैं। यदि विचार बलवान और चौकस न
ना विचारों की आवृत्ति निर्मल बनती है और बोड़े समय
बनकर निरंतर जाती है।

यदि विचार प्रबल हो और बार बार उनकारटन किया हुआ हो तो आकृतियाँ नियमित और चौकम बनती हैं। पवित्र विचार का पवित्र आकृति और स्वभाव विचार की स्वभाव आकृति बनती है। जिसके विषय में विचार किया गया हो उसकी ओर आकृति तीर की तरह भागता है। यदि अपने विषय में विचार किया गया हो तो उस विचार की आकृति हमारे मन रूपी समुद्र में तैरती सी प्रकृत होती है। उम्मी आकृति का अपने ऊपर असर पड़ता है।

बार बार हम विचारों को उत्पन्न करने में ये आकृतियाँ महायुक्त होती हैं। इमलिए विचार अथवा भावनाय उत्पन्न करने से पहिले विशेष साधना की आवश्यकता है। साधना रहे जिससे कि अपना शब्द अपना गत न करे। स्वभाव विचार के वल्ले उत्तम विचार की ट्रेज भी डाली जा सकती है। यह राजी तुम्हारे हाथ का खेल है। ऐसा उत्तम शक्ति क होत हुए तुम अधम शक्तिया की ओर किस विण गिरे जा रहे हो।

शुभ आशावना और विश्व की भला करने वाले विचारों को अपने हृदय में स्थान दो। निरन्तर ऐसे ही विचार करो। फिर देखो, कि अमंगल रूप अशुभ विचार भागते हैं कि नहीं। इसका परिणाम यह होगा कि यदि तुम किसी भा विचार के करने का प्रयत्न नहीं करते तो उस समय तुम्हारे मन में शुभ विचार ही स्फुरित हाने। प्रथम क्रिय हुए शुभ विचारों की आकृतियाँ, आस पास फिरने से शुभ विचारों की वृद्धि करता हैं।

उनके मार्ग में रहने वाले अणुआ को अपने स्वरूप में यासित करके शब्द की आकृतियों को पत्र कर, हमारे मनुष्य के कण में प्रविष्ट कर शब्द के आशय का बाध करता है। यह मनुष्य हमारे वचन के आशय को समझ कर तदनुकूल ही प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार के तथा इससे भा सूक्ष्म और प्रबल गुण, विचारा में हैं कल्याण का मार्ग जीव का समाग का मार्ग बनाना है। दुःख का विचार अशान्ति, उद्वेग उत्पन्न करना है। जिनकी विरत दृष्टि विशाल है उनकी तरह यदि हमारी भा दृष्टि विरमित हो जाय, तो हम अशुभ विचार करने छाड़ सकत हैं।

जिन मनुष्या का स्वभाव सात्विक और सद्विचार वाला हो उनके मन्त्राम में आने से मनुष्या को शान्ति मिलता है। उनका पाम बैठने से आनन्द प्राप्त होता है। समीप रहने से शुभ विचार के धान पुष्ट हान है। एक समय में मन्त्रतन का काय सुगम हो जाता है। इसका एक मात्र कारण यही है कि एक मनुष्य के विचारा के आन्वालन से उनका समीप वर्ती पवित्र वातावरण से हमसे कमी सुन्दर स्थिति में पहुँचा दिया है।

हमरी आर कुट्ट हलक विचार वाले अविचारा और दुर्गुणी पुरुषों के सहजाम में आने का प्रसंग मिले तो, मनुष्या में अशान्ति असन्तोष, कामवासना और द्वेष का वृद्धि होती है। जन्मे दूर भागने को मन चाहता है। इसका कारण उन जीवों का अन्व विद्या द्वारा अशुभ वातावरण है। उनके स्वभाव

जादालन की आकृतियों हमारा म वैसी दैन अशुभ भावनायें उत्पन्न करता हैं। उन्हीं क स्वभाव का ज्ञान अपने स्वभाव म पड़ता है। वे आकृतियों उस ज्ञान का जागृत करती हैं। यह ज्ञान हमारा अशुभ उत्पन्न क लिए प्रवृत्त करता है। ऐसी प्रवृत्ति स अपने म रहने वाले अशुभ ज्ञान का पापण मिलता है।

भिन्न भिन्न विचार शाला ज्यक्तिया के आन्तलन प्रवाह भिन्न भिन्न जाति में प्रवृत्त है। पैरागा पुष्प क मन म पैराग्यका वातावरण प्रगट होता है। त्यागा क मन म ने याग का, तपस्वी क मन म तपस्या का, यागी स मन म योग का ज्ञाना के हृदय से ज्ञान का, भक्त क हृदय से भक्ति का और भोगा के मन से भोग के विचारों का प्रवाह बहा करता है। इसम उस उस जाति के आन्तलनों का प्रवाह उस उस जाति की भावना रखने वाले और उन्हीं मस्कार वाले जागों क मन म उसी जाति क विचार बहुत जल्दी असर करने वाले हात हैं।

इसम यह स्पष्ट है कि विचार तुम रोगे जैसे उमा विचार के जात्र तुम्हारा और आकर्षित हाग। और वही प्रभाव निरम क जात्रा पर कर सफोग। ऐम विचारों का मुख्य केन्द्र तुम बनोगे। और ऐम सजातीय विचार वाला के तुम महायज्ञ बनोगे। उनसे मरुट म डालन वाले तथा म-भाग से भ्रष्ट करने वाले तुम ही होगे। आत्म ज्ञान की जागृति विना तुम जा फलके विचार पैदा करत हा उनस तुम अपने का और दूसरा को दुःख क गये म घरेलेने हा। इसका भली प्रकार ध्यान रखोगे कि

नितने जिम्मेदार तुम अपने वचन के हो उससे भी अधि-
 जिम्मेदार विचारों के हो। इसका कारण यह है कि वचन का
 अपक्षा विचार अधि-दूर जाते हैं और मनुष्या पर अधि-
 अमर डालते हैं। वे मनुष्या में रहने वाले सत्तागत मस्कारों के
 विशेष प्रकार तथा पोषण करते हैं। दूसरा के सम्बन्ध में सारा
 गते करनी, निन्दा करनी, निर्दोष पर दाप लगाना उनको लोगों
 का दृष्टि में गिराना ये कार्य बहुत बुरे हैं। उनमें ये दोष हों या न
 हों तो भी तुमको उनसे काइ प्रयोजन नही होना चाहिये। इसमें
 तुम अपनी ही अधम वृत्ति को प्रगट करते हो। इस का
 यह फल होगा कि तुम का दोषों के भावन स्वरूप
 हो जाओगे। इसलिए तुम दूसरों की बुराई की बातें करना
 छोड़ दो और ऐसे विचार करने की देन डालो जो तुम्हारे लिये
 और दूसरों के लिये भी लाभदायक हो। कल्पना करो कि किसी
 मनुष्य में अमुक दोष है और उसको किसी मनुष्य ने प्रगट किया
 कम प्रगट करने से बहुत से मनुष्यों—[उसके दोष को जानने
 या न जानने वाले लोगों—] ने अपनी दृष्टि और भावना उसकी
 तरफ लगाई, उन मनुष्यों ही उसके दोष का पता लग गया तथा
 अपनी अपनी सम्मति प्रगट करने लगे। इस विचार पूँज का
 प्रभाव दोषों के डरद गिरद घूमता है उसका मन में यह विचार प्रविष्ट
 होते हैं। यदि कममें दोष कम था तो अब इन विचारों से कम
 दोषों में और भा वृद्धि हो गई। और कमका आचरण भी वैसा
 हो जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि उस विचार के फैलाने
 वाले मनुष्य ने इस-निर्दोष या सदोष मनुष्य ने दोषों के बीचों

को पूर्णतः जमा दिया। यदि हममें थोड़ा बचे तो उनकी वृद्धि हो गई।

इस दाप और टुल्य पूरा समाप्त में हम प्रकार के अधम मनुष्य विशेषतः ज्ञान से या अज्ञानमदोषों की वृद्धि कर रहे हैं। ऐसे कारण रहित और निःप्रयत्न उत्पन्न क्रिये हुए पापों से आप पांडित हो रहे हैं। और हमसरो की पोषित कर रहे हैं। इसलिए निम्न दोषों से जहाँ तक हाँ मरे बचना चाहिये।

हूँ मनुष्यो! तुम मद् वृत्ति का तरफ भ्रमो। हम तुम शुभ विचारों को अपनी तरफ आकर्षित करोगे और हमारे के सद् गुणों का पोषण कर सकोगे। यदि किसी के अत्रगुण दृष्टि में आते तो उनका तरफ लक्ष न ला। उनका चिन्तन न करो। यदि तुम दापों की तरफ ध्यान दोगे तो तुम्हारे विचारों के आन्दोलन से उनके अत्रगुणों का उत्तचना मिलेगी और वे और भी त्रिग होंगे। तुम्हारे पैर प्रेमिया का यह कतय है कि तुम्हें जिस गुणों की आवश्यकता है उसका तरफ ध्यान लगाओ प्रेम और एकाग्रता बाल विचारों से तुम अपने मन का परिपूर्ण करा। और उन विचारों की मानमित्र मूर्ति अपने सामने खड़ी करो? इन विचारों का प्रवाह हमसरो का तरफ बहाओ। इस प्रकार तुम अपने हितैषियों का सहायता कर सकोगे और उनकी गुणी बना सकोगे?

इस प्रकार विचारों का बहुपयोग करो? अपने विचार बल के परिमाण से गुप्त रीति से तुम विश्व का कल्याण कर सकोगे।

इस शक्ति का सदुपयोग करा। इस समय मनुष्यों के विचार बल बहुत कम और मन्द हैं। आमदनी के बिना खर्च करना मूर्खता है। इसलिए इस रीति में ध्यान करो निम्न अपना और दूसरा का भला हो।

ध्यान और योग के स्वतंत्र भाग भा अपनी विचार शक्ति के मद्दय और निराध के लिए ही निमाण निय गये हैं। चित्त को वृत्तियों का निराकरण करना योग है। विचार शक्ति महान शक्ति है। विश्व के सम्पूर्ण मायिक मय दुःख का खण्डन इस विचार शक्ति के सदुपयोग और दुःखयाग में ही हाती है। मन को निर्विकल्प तथा म आत्मा की अनन्त शक्तियों प्रकट हाती हैं, वा शाश्वत हो कर परम शान्ति का स्वी है।

प्रकरण चौदहवा

आध्यात्मिक जीवन

यह जीव हजारों घटनाओं के बीच में गुजर कर माया जाल को भंग कर और प्रत्यक्ष परिवर्तन शाल नेह-आकार में भी परम शाश्वत आत्म तत्व को दर्शना है। यही-आध्यात्मिक जीवन है। आत्मा को ज्ञेया। उस पर प्रीति रग्या। आत्मा का अनुभव करो। यही सही आध्यात्मिक विद्या है। इससे अतिरिक्त सब ज्ञान अज्ञान ही है।

जिस जीव में जायन-आकर-इह में आसक्त होकर आकार में ही मर्यापित रहना है वह आध्यात्मिक जीवन नहीं

का सम्बन्ध प्रकृत जगत् का है। प्रत्यक्ष ज्ञान पर परमात्मा को
संज्ञा हुए रूप का है। अर्थात् होते हैं पर आत्म
धर्मयाम् है।

प्रकृत म आत्मक ज्ञान ज्ञान है। मिथ्याओं भा माया का
है। ज्ञान विद्या का है। आर्थात् ज्ञान आत्मज्ञान ज्ञान आद्य
अर्थ म ज्ञान है। ज्ञान माया का आत्म के वादे रह हुए तत्त्व को
ज्ञान का ज्ञानस्थान है। अर्थात् आत्म के लिए प्रिय नहीं
है। आर्थात् ज्ञान ज्ञान है। ज्ञान आत्म ज्ञान है जेमा
ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान ज्ञान है।

अन्तःकरण के आदेश म ज्ञान हमारा वर्तमान है। उसे
जानकर ज्ञान आत्म ज्ञान आत्म में निश्चय रहने म अपने
अन्तःकरण की प्रतिमा मिलने लगता है। इसी का अन्तःकरण की
धर्म रहने है। मन ज्ञान धर्मनाथ म ज्ञान अन्तःकरण मनुष्य
का ज्ञान ज्ञान ज्ञान माग पर ल जाता है। ज्ञान यह जीव अपने
माग का भूत कर ज्ञान ज्ञान ज्ञान माग में चला जाता है। और
यह ममता है कि मैं अपना अन्तःकरण का आदेश के अनुसार
चल रहा हूँ। परन्तु यह अन्तःकरण का धर्म है या अपने मन
का इच्छा है। इसका अन्तःकरण ज्ञान के लिए कठिन है।
इसका निश्चय करने के लिए अपने ज्ञान चित्त म प्रविष्ट हान
ही सत्य माग है।

प्रथम ज्ञान की इच्छाओं का ज्ञान करो। मैं शुद्ध आत्म
स्वरूप हूँ ज्ञान विचार कर मन और शरीर का अभिमान छोड़ना

चाहिए। आत्म भाव का हृदय तक विद्यमान होना चाहिए। और ऐसा हो इष्ट गुरु से प्रार्थना करो कि प्रभु, तुम्हारे मार्ग पर चमत्कार करे। आत्म निरीक्षण और मन में अशांति है। उमर कम हो मार्ग ठीक मालूम हो तुम पर कर्म बंधन।

जमा प्रयत्न करने पर अंतर्दृष्टि का उदय होता है। तुम्हारे कर्मों में मने का परिश्रम समझने से तुम्हारे हृदय में जो त्रास पसका अपना हा भूल समझा। अपना कर्मों से अलग होकर अलग अलग भूल स्वीकार करना चाहिए। नाराजि अद्वैत और इच्छा क वशाभूत रहने से भूलों का उद्धार के लिए प्रयत्न करते हुए वह भूल सुधर जायगा। नाराजि पर चलने से तुम्हारे अज्ञान से भूल हा जाय ता गिफ्त हो। भूल का दुःख सहन करो। क्योंकि दुःख अपने आप ही अपने को दूर करता है। और यह एक गुप्त आशा है।

यदि मनुष्य किमा का अभाव का निश्चय करता है उसकी कठिनाइयां से घबराकर अज्ञान की ध्वनि का उदय करता है और काइ दूर अज्ञान मार्ग यथावत हो जाता है वह स्वाना समझता हुआ, अज्ञान अज्ञान की ध्वनि से अज्ञान उम मार्ग पर प्रवृत्ति करता है। अज्ञान परिणाम से होता है कि उसके अन्तःकरण का अज्ञान पड़ जाता है।

निम्न मार्ग पर चलने से तुम्हारा अज्ञान हो उस मार्ग पर चलने से तुम्हारे अज्ञान हाते हो। "यह अज्ञान ही है। तब

त्रिगुण भाग पर चलन से जो परिणाम होगा उसमें भी सहस्र गुण युग परिणाम अन्तःकरण के आदेश व विरुद्ध निर्मा भी भाग पर चलन से होगा। निरन्तर उद्योग विना कर्तव्य का जग हाथ नहा आता। अपना मन्त्र चोरन गुनारने वालों आर आत्म ज्ञान तथा अनुभव में आगे जा हृदयगुणा का मगति करना भा-आत्म साधन का आवश्यक भाग है।

जन्म भावना का आदेश तुम में उद्योग है वह ही तुम्हारा गुरु बनने का योग्य है। जो मन्त्र आमन्त्र है उसका चरण बड़े उच्च प्रकार का जाना चाहिये। जन्म आर पूज्य बुद्धि रख कर उनकी आज्ञा पालन करो।

जो तुम्हारे समगुण हो उसके प्रति नम्र, प्रेमी बन कर उसके सहायक बनो। अपना मन्त्र गुण बाल जाया की तरफ दिया और सहानुभूति का भाव रकरा। यह मन्त्र सामान्य कर्तव्य है। आगे बढ़ने वालों को इस कर्तव्य में बरा भा भूल नहीं करना चाहिये। जो गेम साधारण काम का उद्योग करता है वह आत्म मार्ग का अन्वेषण नहीं हो सकता।

यह ध्यान रखना कि जो कोई भी मनुष्य तुम्हारे परिचय में आए, वह तुम्हारे समागम में प्रेष मनुष्य बन जाय। यदि कोई अज्ञाना तुम्हारे पास आए, तो अपना ज्ञान से उसका लाभ पहुँचाओ। यदि कोई दुःखी तुम्हारे सहवास में आवे तो, उसका सान्त्वना देकर उसका दुःख को कम करने का प्रयत्न करो।

काइ निराधार मनुष्य तुम्हारा सहारा लेने तुम्हारे पास आवें, और तुम में धूल हो तो अपनी शक्ति का उपयोग करके हमें दुरुस्त कर दो। तब ही तुम्हारी सगति और शक्ति का सार्थकता है।

तुम निरंतर अविनाशित नष्ट और महानुभूति पूर्ण बना। कठोर होकर दूसरा का व्याकुल मत करो। जगत् मनुष्य नाशित नहीं। इसका तुम नम ही करो मगर अधिक न होना। तुम प्रकाश रूप होकर दूसरा के लिए मार्गदर्शक बनो। तुम्हारा सगति में आने वाले जीव तुम्हारे प्रकाश का लाभ उठाकर निश्चित और निर्भय स्थान में पहुँच सकें इसमें तुम अपनी सहायता करो।

तुम्हारा दूसरा पर कर्मा प्रभाव पड़ता है, इसी में ही सच्ची आध्यात्मिकता मालूम हो जायगी। तुम्हारा जन्म स्वयं नष्ट बन कर दूसरा को उच्च बनाने के लिए है, इस मार्ग को समुदाय रख कर अपने जीवन का सद् व्यवहार करो। पाप की अज्ञानता निश्चलता और नीच वृत्ति को त्याग कर उन्नत और कठोर बन बनो, ये गिरे हुए हैं उनके उठाने में सहायक बना, तुम उहाँ सँभलें हो वहाँ में यदि गिर जाओ तो तुम्हारा सदा हान लिये दूसरा की सहायता की आवश्यकता होगी और वह सहायता तुमको उस धरत मिलेगी जब कि तुमने दूसरे की सहायता की होगी।

यह समस्त जीवन अध्यात्म जीवन है। उन मंत्र में आत्मा के गुणों का अन्तर्गत करा, तब ही तुम्हारी भावनाएँ उच्च होंगी। अर्थात् आपाविया म निस भेत् भाव को तुम दृश्य रहे हो, वह भव भाव आत्म ज्योति के दर्शन से नष्ट हो जायगा। अध्यात्म ज्ञान म ज्ञान वाला अन्त में परमात्म स्वरूप हो जायगा।

प्रकरण पन्द्रहवाँ

स्वाश्रय

अपने आत्मा पर श्रद्धा रखकर आग बटने वाला मनुष्य, महान् से महान् कार्य कर सकता है। आत्म श्रद्धा विजय की चामा है। स्वाश्रय पर रहने वाला मनुष्य, अपने आपका अर्च्छा बना सकता है।

यह ज्ञान आप ही अपना मित्र तथा शत्रु है। एक का दुःख दूसरा नहीं भोगता। इसा प्रकार का सुख भा दूसरा नही भोग सकता। प्रत्येक जीव का भला बुरा पुण्यपाप ही उसको सुख या दुःखी बनाता है। मनुष्या! औषधियों में भरी हुई अलमारियों को देखने में क्या लाभ? जब तक कि रोग का निश्चय करके योग्य औषधि का उपयोग न किया जाय। इसी प्रकार धर्म के औषधियों धार्मिक पुस्तका म लिखी हुई हैं केवल उन पुस्तकों को पढ़ने और सुनने मात्र से ही आन्तरिकरोग कमरोग नहीं मिटेगा किन्तु उन पुस्तका म पढ़े अथवा सुने हुए को व्यवहार

म लाने से ही तुम्हारा पुरुषार्थ तुम्हो जन्म मरण व रोग से छुड़ायेगा।

इस विश्व वाटिका में उत्तम से उत्तम स्वादिष्ट पौष्टिक, सुखदाया और उलगायी अनेक प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं पर उनका मूल्य देने वाला ही उन फलों का उपभोग कर सकेगा है। इस विश्व वाटिका का स्वादिष्ट फल, आत्मा का अनन्त शक्तियों का विकास है। कोई पिरला पुरुष ही इन अनन्त शक्तियों का आनन्द प्राप्त कर सकता है।

वसन्त ऋतु का लक्ष्मी का ध्यान माला से अधिक उसने मर्म ज्ञान का समझने वाला ही ले सकता है। इस प्रकार प्रकृति के मर्म अर्थात् यन्तु तत्व व रश्मि का उभय निष्पन्न प्रयत्न करने वाला और उसी समझ बल ही जान सकता है। जैसे आकाशीय यात्रा का आनन्द वायु या (जहाज) का किराया देकर मिल सकता है इसी प्रकार के आनन्द को भोगने का आधक्य, किराया पर विश्र की मायिका पस्तुओं का देना देना हो सकता है।

चाहे तुम गुरुपना का सहारा न ले रहे तो भी चारी जानन तो तुम्हें स्वयं ही दे सकता है।

इस जानन गाडी के मुन्हा बनने के स्थान पर सचालक बनो। तब ही गुरु, गुरुपुत्रादि से स्थान पर मिलोगे।

दूसरे सत्पुरुष हमारे लिए अधिक न अधिक इतना कर सकते हैं कि वे हम धाधा रहित निर्दोष भाग बनला दें परन्तु उसका लाभ लेकर उस भाग पर चलने का प्रयत्न तो हमें स्वयं करना होगा। इसके बिना तुम पूरा स्वरूप का नहीं पहुँच सकते।

अनुकूल और प्रतिकूल संयोगों को तुम अपने विचारों से बन सकते हो। तात्पर्य कि अनुकूल संयोगों को प्रतिकूल बना सकते हो और प्रतिकूल संयोगों का अनुकूल बना सकते हो। इसलिए प्रतिकूल संयोगों का अनुकूल बनाना सीखो। और अनुकूल संयोगों का विलम्ब रहित लाभ लो। यद्यपि यह किस का पता है कि कल अनुकूल संयोग प्रतिकूल रूप में बन जायें।

‘म जैसा चाहूँ वैसा बन सकता हूँ’ ऐसी उक्ति आत्म श्रद्धा ही तुममें मात्र गुणा को लाने में समर्थ है। मानसिक शक्ति वाला आध्यात्मिक बल वाला और सत्य को समझने वाला विवेका मनुष्य भा यदि आगे नहीं बढ़ सकता तो उसका मुख्य कारण आत्म श्रद्धा और अनुकूल पुण्यार्थ की कमी है। यदि इन कमियों को दूर किया जाय तो वस्तु में सत्य का सत्य स्वरूप अत्रय प्रकट होगा।

मनुष्य को पुण्यार्थ करने हुए यदि किसी कार्य में सफलता न हो तो वस्तु का सिद्धि में बाधक स्वरूप कारण की खोज करो। इसमें या तो साधन की पूर्णता नहीं या अपनी निर्मलता है। यदि पुण्यार्थ की कमी हो तो खोज से प्रतिकूल संयोगों को निकाल कर और पुण्यार्थ करके उस पर विजय प्राप्त करो।

दूमरों की सहायता पर आधार रखने वाले, सत्ता दूमरों के अधीन ही रहा करने हैं। अपने ऊपर भरासा रखने वाल ही कार्य सिद्ध कर सकते हैं। वह हा मन्त्रम जलजान् गिन जात हैं। आत्मा बाहर की वस्तु नहीं इमलिए वह बाहर वस्तुओं के माधनों पर आधार नहीं रखता, आत्मा मन्त्र ही अपने आपसे प्रगट होता है।

जो मनुष्य परीक्षा के समय दृग् तथा कठिनता के प्रसंग में मध्य रुका रह कर अपने बल की परीक्षा करता है वही अपने आत्म बल पर जोन वाला है। जसको किसी महारा केन वाले या महानुभूति प्रकट करने वाले का आशयकता नहीं क्याकि जस मन मन्त्र अपने आधार पर रचना सीगा हुआ है। जो काम स्वतः किया जा सकता है, जस काम को करने के लिए यदि दूमरों पर आधार रखा जाय तो तुम में धारे धीरे आलस्य का प्रवेश होन लगेगा। फिर तुम्हारा कार्य करन में आत्मविरास कम होता जायगा। अन्त में तुम अपनी शक्ति, प्रयत्नता को खो बैठोगे।

कइ एक मनुष्य अभिमान से अपने में ही सर्वस्व रखने की वृत्ति रखत हैं। परन्तु यह आत्म श्रद्धा नहीं। आत्म श्रद्धा, विपरीत सयोगा में भी अपने मामर्ध्य पर दृग् विश्वास तथा आशा रखते हुए, अकेले खड़े रहने का विशिष्ट शक्ति है। जैसे लता वृक्ष का आधार लेती है ऐस तुम आधार लेने वाले मन बना, १५

भोग्य भोगन म काइ नहीं देता। ओ अनन्त शक्तिन
 आमा ! तुम अनन्त शक्तिनया क निधान हो। याहर से तुममें क
 शक्ति न आयगा। इसलिए तुम स्वयं पुनर्पार्थ करो और कम
 घोर क नीचे दूरी हृइ, टिपा हृइ आ मशक्ति को प्रगट कर
 प्रभु महापार का यह मिनाद है कि तुम चाहे कितना प्रार्थन
 करा, अनुनय विनय करा और राया करा ता भी तुमका तुम्हा
 अनन्त शक्ति नहीं मिल सकी। यह तो तुमको स्वयं पुन
 करने म प्रगट करना होगा।

आम स्वरूप तुम स्वयं हा। यह ऐसी वस्तु नहीं जो तुम
 काइ दूमरा न सक। इसका ता तुम स्वयं ही अनुभव में
 सकत हा। ता तो दूर रहा कम क उन्मय क समय कोई क
 यक भा नहा हा सकगा। ता न हूण कर्म स्वयं ही भोगन पदत
 प्रभु महापार क जावन म न घटना आना है कि, जय न
 त्याग का मार्ग प्रण शिया नम समय इन्द्रद्व न आकर वि
 का कि प्रभा ! आपने कर्म बहुत भोगने है और नके उपभो
 नपसग भा बहुत होग इसलिए आपकी आज्ञा हो तो में
 उपसर्ग का दूर करन क लिए आपक समीप रहूँ। तम
 भगवान महापार न यह उत्तर शिया था। क, इन्द्र ? रसा
 नहीं हुआ, न होगा, कि तीरकरा अवता ठमरों ने किस
 सहायता से आम स्वरूप प्रगट किया हो। उनको अपने
 पृष्ठ कर्मा का नाश या उपभोग स्वयं ही करना पड़ेगा और
 प्रसन्नता पूरक करना चाहिये। इन कर्मा के क्षय करन के
 हा र्ण ज्ञान प्रगट हाता है।

कर्मा का भोग ही कर्मा का जय है। कर्म जय करना ही पढना है। दूसरों की सहायता लेने में कम भाग का समय गत्ता है। अन्त में विना भाग छुटकारा नहीं होता। जय भोगने हा हैं तत्र शूरवीर बन कर क्या न भाग जाय। इस उत्तर पर शत्रु निरुत्तर हो गया, तो भी यह भक्ति में प्ररित होकर एक त्रेत्र को प्रभु की मया में, मरणान्त उपमगा को निवारण करने के लिए द्वाड कर त्रेत्र लोफ का चला गया। तत्र भी प्रभु क सामने प्रवल उपमगा में टुख भागन का प्रमग उपस्थित हाता था तत्र हा यह त्रेत्र किमी न किमा कारण में उहाँ उपस्थित न होसकता पर उपमर्ग जय कष्ट भागन के मात्र नुरान आ उपस्थित हो जाना और अपन प्रमात्र क लिए पचास्ताप करना था।

अपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय है कि तान ने अपना आम भ्रान्ति के समय में आत्म ज्ञान भूल कर जो कर्म बोधे थे वह बोधने की शक्ति जीव का थी। पर शक्ति का दुर्प्रयोग कमा क जन्यन का कारण हुआ। उमी आत्मशक्ति का सदुपयोग करने में जाय कमा के जन्यनो को तोड सकता है। कम श्रद्धला को ताडने में दूसर का सहायता उपयोगी नहा होती। क्योंकि परिणाम की वारा चलने में ही कम में छूट सकत हैं। परिणाम को धारा का तो जीव स्वयमेव हा चल सकता है। इसमें दूसरा का प्रवृत्ति उपयोगा अथवा सफन नहीं हा सकती। इच्छा रहित हुए विना स्व स्वरूप में स्थिति नहा होती। इन इच्छाओं के सम्बन्ध को जीव स्वत हा परे हटा सकता है। यह कार्य अन्तरंग

है। दुसरे के उपभोग में, दूसरे मनुष्य यात्र अनुकूलता से मरत है या चंतावना नर सक्त है परन्तु अन्तरग इच्छाओं का ज्ञान और म्बरूप म र्विति का वाप तो जाव को अपन आप हा नरना पडता है।

आम म्बरूप का विकास करन के लिए यह जावन एक युद्ध का प्रसंग है। यह युद्ध म्बरूप लडने का है। इसम वार पुरुष की तरफ अपन पराक्रम से कुछ कार्य करके दिग्गता है। क्योंकि सामन काम, क्रोध, लोभ, मोह और अज्ञानता की मना गडी है। उमक साथ मुनायिला करना है। यह मुनायिला एक दिन, एक महान या एक वष का नहा किन्तु जीवन पर्यन्त युद्ध करक इनक उपर विजय प्राप्त करना है।

इस लडाइ मे तुम दूसरों का नहा भन सक्त। इसम भाडे के आत्मी काम नहा आ सक्तने। आर इस लडाइ स तुम भाग भा नहा सक्त। उमम विजय का प्रश्न है, जीवन मरण का विचार है। स्वाश्री उन कर पुरपाव करो, यही विजय है, यही आत्म विकास का मूल मत्र है। जिस शक्ति को प्राप्त करने की इच्छा है उसका मूल्य तो तब तुमका वह शक्ति प्राप्त होगी। तुम्हारी जाति का आत्मा ही है, मन, वचन, शरीर इत्यादि तुम्हारे साधन हैं। इतना सटुपयोग करा। इससे तुम्हारी अखुश शक्ति बढगा।

तुम सदगुणा की खान हा। इसमें रस गहरे न्तरा। न्सर अन्दर छिपी हुई वस्तु तुम्हारा हा है। परन्तु बाड़ा पुष्पाथ करके, इसको गहराइ से बाहर निकालो। इसको दया कर रखने

बला इच्छा, कामना, धामना, रूप, कर्म की धूल है, उसको दूर भगाओ, एसा करने से हम अक्षय भंडार के स्वामी तुम ही बनोगे।

तुम इस समय निम्न स्थिति में हो, उच्च-तम स्थिति में जाने का प्रयत्न करो। इसमें आत्म श्रद्धा की शक्ति के साथ आत्म शक्ति के विकास का प्रारम्भ होगा। इसी प्रकार तुम्हारा प्रयत्न ही निम्न में आगे चलेगा।

नैसर्गिक युद्ध में विजय का मुख्य साधन यही है कि—पहले स, अस्त्र, शस्त्र, सत्र प्रकार की सेना तथा अत्यान्वय युद्ध सम्बन्धी सामग्री उचित और अधिक परिमाण में संचय करके इन्हें एक सुदृढ़मान् सनापति के अधिपत्य में रखा जाता है इसी प्रकार साहस के साथ युद्ध करने के लिये, अपने ज्ञान आदि हथियार, शरीरादि साधन और विचार आदि के माग का ज्ञान सद्गुरुओं की सेवा में रखना का प्रयत्न करना चाहिये। तब अक्षय तुम्हारी विजय होगी।

सच्चा सम्बन्ध तो शुद्ध आत्मा के साथ करना चाहिये। गुरुत्व में तुम जैसे थे, उससे अन्धे और बड़े जनन का प्रयत्न करो। यही अन्दर का विकास है। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं और वे पुरुषार्थ द्वारा प्रकट होती हैं।

भय से न घबराओ ? निराशा न हावा ? आत्मा के समीप आते पाओ ? यहाँ भय नहीं पर शान्ति है। निराशा नहीं पर

आनन्द है। अपने ऊपर आधार रक्खा। स्वयं परिश्रम करो। अन्त में तुम्हारा ही बल तुम्हारे काम आयेगा। मेरा जेब टेमा था, मेरा गुरु एमा था, हमारे पृथक् जेमे महान् हो चुके हैं जेमी एसा बातों से मन्तुष न होया। वे बडे पुम्पायी हो चुक हैं तुम भी उनके चरण चिटों पर चलकर यदि आत्म पुम्पाय कराग तो अजरय पैस जनीग।

प्रकरण मोल्लहरा

“आत्मभान”

बहुत से मनुष्य शरीर प्राण्य आर मन श्यादि नत्रा म ही अधिज जागत रहते हैं, परन्तु इनका प्रयाग नई जानते। इन तत्रा स अपने तथा दृमग को लाभ कैम पहुँचे, जेमा ज्ञान सज म समान नद्रा हाता। तथापि इनका उपयाग स्वत सर कर रहे हैं। परन्तु मञ्चा आत्मभान [आत्मनिशा] ता बहुत ही थोडे चीजों म जागत होता है।

कइ एक लाग शरीर बल का अन्ध्रा तरह से उपयुक्त करते हैं। त्रिभिध प्रकार क व्यायाम कसरत करे, मैण्डा का मा शारारिक बल प्रगत करे मोटर रोहन हैं। सगल तोड सकत हैं, छानी के ऊपर पत्थर तुडनाते हैं और हाथा चढ़वाते हैं। इस प्रकार शरीर बल का ब्याकर वीर पुम्पा का गणना में आते हैं।

कइ एक जीव, अपना इन्द्रिया को इस प्रकार तेनम्बी बनाते हैं कि बहुत दूरवति तथा—सुदम वस्तुओं को आँगो से देख

मकत हैं। अनेक मिथित वस्तुओं का गन्ध, नासिका द्वारा पहचान कर, पृथक् पृथक् वस्तुओं के नाम बता देते हैं। एक ही साथ बहुत से वातवा का शब्द सुन कर, परापर मनना प्रथक् प्रथक् नाम बता देते हैं। अनन्य स्त्री पुरुषों के स्वरों को अलग अलग पहचान लेते हैं। बहुत वर्षों का सुन हुए शब्दों को पहचान लेते हैं। मुँह से अनेक पशु पक्षियों की बोली को परापर जोल मकत हैं। रसना इन्द्रिय का इतनी तीव्रता बना लेते हैं कि त्रिविध रस वाली वस्तुओं के स्वाद में, उन वस्तुओं का अलग अलग बता देते हैं। हाथ, पाँव के स्पर्श से त्रिविध प्रकार की वस्तुओं का पहचान लेते हैं। आँसु के बिना, केवल हाथ से ही चरे मोटे रूप्य का पराका कर लेते हैं। बहुत समय के बाद भी, वेग्या या अनुभूत की हुई वस्तुओं के स्पर्श से उनकी दशा ठीक ठीक बता देते हैं।

प्राण वायु को रोकने का अभ्यास करने वाले अधिक समय तक प्राणों को रोक सकते हैं। प्रणाम प्रशाम को बन्द करके समुद्र तल तक पहुँच कर माता इत्यादि रक्षा का निकाल लेते हैं। प्राण को रोक कर मृतक पशु की तरह कुछ समय तक पड़े रह सकते हैं। नाडियों की गति को बन्द करके प्राणवायु को प्रवर्धन से रोक कर महीनों तक जमान में प्य रह कर फिर जीवित बाहर निकल आते हैं। अभ्यास से प्राण जैसी सूक्ष्म वस्तु का भी बन्धन में कर सकते हैं।

मन को रोकने के अभ्यास से विचार किये बिना कार्य बाल तक रह सकते हैं। विद्याभ्यास द्वारा मन को बहुत मजबूत कर सकते हैं। मानसिक बल के योग से एक पुष्प बहूतों को चरित और कपति कर देता है। तथा बहूतों का मुखाग्रला कर सकता है। कड्या को परास्त करके विषय प्राप्त कर सकता है।

वचन के बल में प्रतीण पुष्प, अनेक जीवों को अपनी वास्तुधान्तुरी में सुगंध कर लेता है, और उनपर अपना प्रभाव डाल सकता है। वचन के प्रभाव में वीर रस उत्पन्न करके अनेक जीवों को रण भूमी में उतारता है वैराग्य रस उत्पन्न करके, अनेकों को संसार से विरक्त बनाता है। शृङ्गार रस में विविध कामनाओं के बल की पुष्टि करता है। भ्रमण शांत रस पैदा करके अनेक जातों को आत्मा की धार लाता है। सत्र पुष्पों को वचन बल से आश्रयानन केर उनमें नय जावन का संचार करता है। कठोर हृदयों को कोमल और कामल हृदय का कठोर बनाता है। विरागा का रागी और रागा का विरागी घना सकता है। घडी में जावा का म्लाता, और घडी में हँसाता है। ये सब वचन बल के कार्य हैं। इस प्रकार एक के बाद दूसरे अधान् शरीर बल वाग्बल, इन्द्रियबल, प्राण बल और मनोबल में चतुर-तनखी पुष्प विश्व में कई मिल जाते हैं, परन्तु धार अज्ञान में निद्रित पुरुषा को, स्वभाव में जागृति पैदा कराने वाले आत्मज्ञानी काइ विरल हा बार इस विश्व में मिल सकते हैं।

प्रायः मनुष्या के जीवन का अधिकांश भाग, आत्म-भान की निवृत्त अवस्था में चला जाता है। और बहुधा शरीर-मन इन्द्रिय-आदि तन्त्रात्मक ही अधिकांश समय घात जाता है। कड़ एक बार यह नहीं जानते कि मैं, 'आत्मा हूँ या क्या हूँ' यही जगता परत रहते हैं। अपने मन, देह और प्राण का ही जीवनमानते हैं। तथा ज्ञेयादि के मरण में अपने का मृत समझते हैं।

जैसे जैसे शरीर, प्राण, इन्द्रिय, धरत और मन प्रबल होते जाते हैं, जैसे जैसे क्रोध, लोभ, मोह, राग और द्वेष आदि भी प्रबल होते जाते हैं। इन मन-आदि की शक्तियाँ धरत के माध्यमों के अन्तर्भावित भाव बढ़ती हैं। आत्म-ज्ञान के जागृत हुए बिना मन-आदि की बढ़ती हुई शक्तियों ज्ञान के उल्टे मार्ग में चलाती हैं तथा उत्तर भागी कल्याण मार्ग में बड़ा बड़ा बाधा उत्पन्न करती हैं। चित्त का दूर हटाने के लिए जीव को बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

यह समस्त, विरसित, शरीर-आदि की शक्तियों ज्ञान-आत्मा के आधेन रहती हैं तब इनमें पवित्रता बढ़ती है, शान्ति आती है, विषयों की लोलुपता और मन की चंचलता कम होती है। जीवन नियमित बनता है, परमेश्वर की धृति जागती है। यह मन का भला चाहता है और प्रसंग वश भला करता है। सब जीवों को अपने समान गिनता है। मन का सहायक होता है। मन-बाधों को मुझी नेत्र कर आनन्दित होता है। यदि आत्म-जागृति न हो तो इन शक्तियों के दुर्प्रयोग का कार्य सुगम है।

जाता है । म्यामी रहित पशु की तरह उम जीव का जीवन म्य छन्न विलामी और निरम्मा बन जाता है । इसके माथ अथोर जाया क सामन उपद्रवकारी हाता है ।

अनन्त शक्तिर्या का म्यान आमा मे बहता है । शरीर इन्द्रिय और मन आत्ति को शक्ति भी आमा देता है । उस शक्ति के अभाव स शरीर आदि चेष्टाहीन हाजर, गेम हा निष्फल हा जान में जैसे वृक्ष मूल स रस न मिलने से सूख जाते हैं । म्म प्रकार स शरीर आत्ति जमीन से दधाने तथा अग्नि स जलाने क याग्य हा रह जाते हैं ।

यह चैतन्य मय आत्मा अमर है । मनुष्य जैसे पुरान बम्ब बन्ल जर, नवान बम्ब धारण करते हैं । वैम ही आत्मा म्म पुरान शरार का छोड कर नये शरारा में प्रवेश करता है । फिर उनम हलन, चलन, स्वमन, वचन और निचार आत्ति क्रियाओं का आरम्भ होता है ।

इन सागं क्रियाआ का प्रेरक अथवा म्यामा आत्मा है । आत्मा की तरफ दृष्टि रखत हुए शरीर आदि की सारी क्रियायें होती रहें और उसकी प्ररणानुमूल हा बतन हात्र, एत्र इन्द्रिय मन आदि अपने स्वार्थ के लिए अपनी इच्छानुसार वर्तन न कर सकें, तत्र आत्मा का जागृत सममो ।

जैसे जैसे आत्मभान विशेष जागृत हाता है जैसे जैसे स्वरूप का प्रकाश अधिक समय तक स्थिर रहता है तथा उसके जीवन में विरोध अन्तर पड़ता जाता है । यह जीव अथ आवश्यकता से

अधिक नहीं बोलता। मौनव्रत उसको अन्धा लगता है। एकान्त वास उसे भाता है। वह समस्त विश्व में प्रेम रखता और शांति का अनुभव करता है। अपने ज्ञान बल से प्रतिकूल सयागा को भी अनुकूल बना लेता है। निम्न समय जो वस्तु मिले उमा में सबोप मानता है। प्रिय और पगल्य दोनों अवरुद्धा में उसकी मनोवृत्ति मम और स्थिर रहता है। वह महत्प्राज्ञा का घृणा की दृष्टि से देखता है। प्रिय और अधिभार, उमनों लालच में नहा फँसा सकते। दुःखी जीवा की आर महानुभूति रखता है। दुःखी जीवा को दृग् कर उसका हृदय पिघल उठता है। जहाँ तक हो सनता है उनको सहायता देने का वह प्रयत्न करता है। अपने मिर पर पड़े हुए रथा के सामन निष्ठुर और कठार बन कर उनका सहन करता है। बल के रमान पर नम्रता दिखाता है। विरोधी के सामन भी वह शांति और सहनशीलता रखता है। अभिमान उससे दूर भाग जाता है। क्रोध उसमें देश निकाला माँग लेता है। वह केवल आत्म भान में ही मग्न रहता और स्थिर रहता है। जब वस्तुओं उसने मन को नष्ट रचा सकते। आत्मा के अन्दर वह शांति का अनुभव करता है। आत्मध्यान में मग्न रहता है। कारण के बिना, वृत्तिया का प्रयाग करके वह अपने बल का नाश नहीं करता। वह जीवोंको आत्मा की ओर लाने के लिए, आमभान में जागृत करने के लिए अपनी शक्तियों के व्यय की उपेक्षा नहीं करता। आत्मध्यान में रह कर क्षण, क्षण में अपनी शक्ति का विकास करता जाता है।

इस अमूल्य जीवन का प्रत्येक क्षण, पवित्र आत्मशक्ति के विकास में रूच करता रहता है ।

जानने जहाँ तक इच्छामें विषया की ओर ग्राचती हैं वहाँ तक, कर्म की वेडियों का तोडकर मुक्त होने का समय बहुत दूर रहता है । जहाँ तक आत्मा वाद्य चगत के सम्बन्ध में आना चाहता है वहाँ तक इसकी इच्छाओं की वृत्ति नहीं होती । जब तक विषयों से पूरी घृणा न हो जाय तब तक मझे आत्म मार्ग का आरम्भ नही होता ।

नैम न्नि जाग्रत होन पर साथा हुआ भोजन, पुष्टिकारक होन क साथ बल की वृद्धि करना है । एम हा अध्यात्मज्ञान की भूय लगन पर एम मागे में प्रविष्ट होन से, शास्त्र हा आत्मा इस माग म अमणी होता है । एम ही मनुष्या का आत्मशा क प्रगट करन से जो समय का अमून्य लाभ मिलता है वह होशियारा से लेना चाहिये । इसके लिय शांत समय निश्चित करो, जब रात्रि शांत हो, आस पास म शांति हो । अथवा ऐसा कोइ धन निश्चित करा जिसक शांत प्रवेश में पशु पक्षी तथा मनुष्या के शां सुनाइ न स्ते हा । ऐम, प्रशांत स्थान पर बैठकर, इन्द्रिया से मन का ग्रीच कर, मन के सरल्प विकल्प शान्त करके अन्दर की ध्वनि का सुनना चाहिये ।

विश्व का स्थूल ह्जा में जा मधुर गन्ध सुनाई नहीं पडता, वह गन्ध, अन्तर वृत्ति से अपने अन्दर सुनी । पहले तो बुद्ध

सुनाई न देगा, पर इस शांत मौन में निर्विकल्प स्थिति में, मन का स्थिरता वाली दशा में पवित्र होने का बल रहता है।

धुंध समय के बाद अनर मगीत वाला शब्द प्रगट होगा। इस अन्तरीय शब्द सुनने पर हमसे हमी में आगे आगे गहरे गहरे चलत जाओ। हमने बाद वह नाद, अनेक ध्वनियों को एकत्रित कर एक रूप हो जाता है। अतः म वह एक नाद भी नहीं रहता। साधक, हमरी ग्यान में उसके पीछे मूढम उपयोग को चलाता है। तब उस नाद का मोन में देह का विचार भूल कर हममें एक तार ही जाता है, तब नाद, त्रिदु के रूप में परिणत हो जाता है। यह त्रिदु प्रकाश रूप होकर आत्म स्वरूप का एक मदशवाहक बनता है। अतः म उससे सधे प्रभु के साथ-शुद्ध आत्मा के साथ भेट करार उस प्रभु के साथ ही साधक को मिला देता है।

प्रकरण मंत्रहवा

साधन का आरम्भ

मन के सुधरने से, चेत और शरीर सुधरत हैं और मन के त्रिगडन से मन त्रिगडत है। आरम्भ में समस्त दुर्गुण मनमें उत्पन्न होते हैं, फिर ध्यान और शरीर में इत्येकी तृष्ट भावनायें कार्य रूप में प्रगट हाता हैं। मन के सुधारन में प्रथम आत्मन को दूर करने का आग्रह्यता है। यह प्रथम सीडा है। इसके उपर पर रमिय। रकमे त्रिना मनान के उपर नहा घड मरता।

आलस्य प्रभु मार्ग का रोकता है, अथवा मुलाता है। आवश्यकता से अधिक निद्रा न लेनी चाहिये। शरीर को, ऐसा विशेष आराम न दो जिससे कि वह आलसी बन। काम का पस घबराना नहीं चाहिये। कार्य को विशेष धीरे धार करके, उसमें व्यर्थ समय व्यतीत न करो। भोजन से पहले या पीछे, प्रातः या साय, निकम्मी गप्प मारने में समय का न खराबो।

निरन्तर प्रभात में उठने का स्वभाव डालो। शरीर को आनन्दानुसार विश्राम दो। काम छोटा हो या बड़ा, उसका ध्यान दूर करो। जागने के बाद शय्या में हट न पड़ रहा। निरूपयोगी बात करने की आदत छोड़ दो। एव, कष्टतरु पट भर कर खाने का स्वभाव न डालो। यह उच्च ज्ञान की दूसरी सीढ़ी है। जो मनुष्य, आवश्यकता से अधिक खाता है, स्वादिष्ट पदार्थों को देखकर प्रत्येक समय खाने का इच्छा करता है उसका शरीर रोगों के लिए भोग रूप बनता है। निरन्तर अमुक परिमाण में ही, वस्तुएँ खाना चाहियें, उनकी गणना करनी, और गणना से भी कुछ कम खाना उचित है। स्वच्छ और पवित्र तथा सादा भोजन खाना भोजन करने का समय निश्चित रखना चाहिये। यह न हो कि जब इच्छा हो तब खा लिया जाय, परन्तु तब भूख में निश्चित समय पर खाना योग्य है। रात्रि को भोजन न करना चाहिये। क्योंकि भोजन करने से निद्रा विशेष आता है। भोजन के सम्बन्ध में, परिमाण, मयादा और निश्चित समय का उल्लंघन न होना चाहिये। इसमें सावधान

रहना जरूरी है। खाने के सम्बन्ध में, जब तक किसी वस्तु से हृदय न फिरे, अथवा मन की भावना न बदले, तब तब भावन में फेर फार करना, अति उपयोगी नहीं होता। स्वाद के लिए, या मन का प्रसन्नता के लिए, न खाना चाड़िये। विषय का इच्छा और विहा की लालुपता से खाना खन्द्यन् वृत्ति है। ऐसा वृत्ति में हृदय का, सदा स्वतंत्र रखकर अपने आप का परित्र बनाना चाड़िये।

विलम्ब तथा दूसरा क सहारे के बिना, शारीरिक सवम का रक्षा करना शक्ति पूरक काम करना प्रातः काल जागना, मिताहार, स्वल्प भावन में मत्ताप, विशेष भावन में अरुचि और विषय घामनात्रा पर अकुश रसना, आदि माता से, जीन शरार सम्बन्धी दा मीढिया पर चढा हुआ गिना जाता है।

शरीर शुद्धि के पश्चात् वचन शुद्धि करने का अभ्यास आरम्भ करना चाहिये। पर की निन्दा न करनी, दूसरों की बुराई का न बूढ़ना, दूसरा क दोषा को उनके परोक्ष में न कहना, इनक दोषा का विस्तार अथवा अतिशयाक्ति से बणन न करना, क्रिसा का गुप्त बातें प्रगट न करना, इन सब बात का समावश, निन्दात्याग में क्रिया जाता है। हर एक निन्दा करने वाल में क्रूरता अविश्वास और आलम्ब के तत्र अवश्य होत हैं।

सत्य जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य निन्दा के वचन नहा बोलत। वे तो ऐसे वचनों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

किसी पर कलक नहीं लगाते। शत्रुओं का भी अनादर नहीं करते। वे तिन बातों को शत्रुओं के मामले नहीं कह सकते, उनको परोक्ष म भी नहा कहत। इस प्रकार औरों के साथ आचरण करने से दुष्ट भावनायें स्वयमेव शान्त हो जाती हैं।

साला समय में व्यर्थ बातें करना, त्रिना जान ही दूसरा के घर का बातें करनी समय व्यतात करने के लिए अदेश्यहीन वक्ताद करना वस्तु तत्त्व का ज्ञान न हात हुए भा, अपनी पाठिता जतलाने के लिए "मैं जानता हूँ" इस प्रकार दूसरा की हों म हों मिलाना वेतुनी जाते, दूसरा के न मानत हुए भा, करते जाना, इन सनरा व्यर्थ भाषा में समावेश होता है।

चाणा की उच्छृंखलता, वाणी पर अशुभ न होना इसका कारण अनियमित नहीं होता है। सधरित्र जान, अपना विद्वान् को अपने वश में रखते हैं। इस प्रकार अन्त में मन पर अधि कार जमाना सीखते हैं। वे विद्वान् का इस प्रकार नहाचलात निम से कि उनकी मूर्खा में गणना हो। वे जो कुछ बोलते हैं हेतु पृथक् बोलते हैं अथवा मौन रखते हैं। यह ठीक भी है क्योंकि अण्डण्ड वकने से तो, शान्त बैठना ही उत्तम समझा जाता है।

कठोर भाषा बोलने वाला मनुष्य औरों को गालियाँ देने वाला पुरुष, औरों में खोटे दोषों का आरोपण करने वाला जान, सभारग स पतित हुआ हुआ होता है। अनुचित वचन कहना केवल मूर्खता है। जिन कठोर वचन बोलने का मन में भाव उत्पन्न हो तब मुँह बन्द रखना चाहिये। सदाचारी जान

कच करने के स्थान में शांत रहने हैं। इसलिए उपयोगी, मत्स्य, पत्र और आश्चर्यतानुसार वचन का व्यवहार करना चाहिये। अत्रु गल प्रवृत्ति और दूसरों के अपमान करने की चेष्टा न रखनी चाहिये। गगन में भग हो ऐसी ऐसी निरुत्साह गप्पा और लज्जाजनक वाता में सदा पराजित रहना चाहिये। दूसरा के तपस्व्यता का आत्म पर विनय प्राप्त करो। छोटे हाथ या उड़कियाँ के भाँसों की, अतिशय्याक्ति में वृत्त न करा। मृगता में भरी रात, रहस्य हान कुतर्क, यह मय शेष अष्टि में मय प्रगट होता है। दूसरा की भूल निकालने में पाप, दुःख अथवा शोक दूर नहीं होता।

जा मनुष्य, दूसरों के गुणों का गोचन के लिए दूसरा का यात सुनता है वह सत्य के मार्ग में बहुत दूर है। जो मनुष्य अपनी रागी को नष्ट तथा शुद्ध करने का प्रयत्न करता है वह ही मद्या जायन प्राप्त कर सकता है, अपनी शक्ति को सचित कर सकता है, और मन को स्थिर करने मत्स्य का अपने हृदय में सप्रण कर सकता है।

बुद्धि पूजक विद्या पर समय रहना माया। शुद्ध, नम्र, और आश्चर्यतानुसार, सत्य वचन वाला जायतन शुद्ध वाणा स्वाधीन हुई नहीं जाती है।

रागी के दामत्य से मुक्त हुए विना कोई भी मनुष्य अपने मन को मत्स्य मार्ग में नहीं लगा सकता। सदाचरण का कच्चा सीले विना मन के सूक्ष्म गुण, समझ में नहीं आते।

आलसी शरीर का यह अर्थ है कि मन आलसी है। उन्मुक्त वाणा का यह भाव है कि उसका मन अनियंत्रित है अर्थात् स्वाधीन नहीं।

जब मनुष्य, आलस्य तथा म्वाद्य पर विनय पाता है तब वह सयम, विनयशालता, और म्वाद्यत्याग आदि महागुणा का अपने हृदय रूपी भूमी में धीरे धीरे, उसका ज्ञान रूपी जल से सींचता हुआ, उसका पोषण करता है। तथा जल, शक्ति और दृढ़ प्रतिज्ञा प्राप्त करता है। एवं यही इसमें उच्च उपदेश ग्रहण करने में सहायक साधन रूप बनते हैं।

विषम पुरुष की वाणा के दाप दूर हो जाते हैं, उसमें सत्यता, निरामय, सत्कार, त्याग, और आत्म सयम आदि गुणों को पोषण मिलता है। और वह मानसिक स्थिरता तथा दृढ़ प्रतिज्ञा पालन करने का बल प्राप्त करता है जिससे कुत्रास नाश को वश करके, आचरण तथा ज्ञानकी उच्च भूमि में पदापण करता है।

कर्त्तव्य का निरन्तर पालन किये बिना उच्च मद्गुणा की प्राप्ति और सत्य ज्ञान नहीं मिलता। स्वार्थ की दृष्टि न रख कर पूरे रूप में कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। कर्त्तव्य पालन के समय, व्यक्तिगत भाव और स्वार्थ के विचारों का त्याग करना चाहिये। एसा करने से कर्त्तव्य, क्लेशजनक होने के स्थान में आनन्दजनक होगा। परिश्रम करने से कर्त्तव्य क्लेशजनक नहीं होता। परन्तु स्वार्थमयी इच्छाओं से कर्त्तव्य पालन छोड़

ज्ञान, क्लेशनाशक होता है। कर्त्तव्य कम जब प्रेम का विषय बनता है तब हरणक काय, निश्चाम और वैर्य से किया जाता है वन का स्वाथपरता भली प्रकार से नष्ट होती है। तब ही, सत्य कश्च शिखर पर चढ़ने की निमरणी मनुष्य के हाथ में आती है। मशायगी मनुष्य मश कर्त्तव्य का पालन करने में ध्यान नैत हैं। वे दूसरों के नाम में रोडा नश अटफते। अपनी भूल से मात्र शान रहते हैं। दूसरा की भूल देखने में समय का नयन नहा करने।

शुद्धि और मत्यता का अभ्यास करने वाले मनुष्य का अप्रमाणिकता, टगमानी और कोरी चतुराई निशाने की टें, दूर करनी चाहिये। मोलन में अतिशयोक्ति अथवा असत्य का प्रयोग न करना, अपगश न भय, अगम लाभ की आशा में, छल का उपयोग न करना, मन, वचन और कर्त्तव्य में प्रामाणिक होना, तथा न्यायपूर्ण और पक्षपात रहित होकर व्यवहार करना चाहिये। जब स्वप्न में भा अशुभ विचार न आन पात्र तब हृदय शुद्ध और उदार बनता है।

ज्ञाना की भावना का निशाम करने में, द्वेष, वैर और शयानि दाप नूर होत हैं। ज्ञाना और दान की प्रवृत्ति में, जीवन निशाम जाता है। नेर आदि का भावनाथा का दूर करने से, कोई शानु नहा रहता। स्वाय त्याग में दान आर न्यारता के विचार प्रगट होते हैं। इस प्रकार अन्त करण का परिवर्तन करने में, आत्मा की अविश उन्नति होगी है। जो मनुष्य, मन, वचन

और शरीर को ढूँढ़ता स पाठ सिखाता है यह हा अपन को वश में रखता है। वह ही दुर्गुणों और कुसनाथा पर नियंत्रण प्राप्त करता है। समार में, ममत्त पाप कवल अज्ञानता से प्रगट हात हैं। यह अज्ञान अधकार आत्मा क अविकाम की अवस्था है। जहा तक अज्ञान का दमन न किया जाय, वहाँ तक आनन्द का प्राप्ति अमम्भव है।

मन प्रकार का दुःख, मनकी दुष्ट भावना म से प्रगट होता है। तथा सत्र प्रकार के सुख, मन का उत्तम भावना में से प्रगट हात हैं। सुख, मन का व्यवस्था पूर्ण उपयोग करने और दुःख मन का अव्यवस्था पूर्ण उपयोग करने से प्राप्त होता है। जहाँ तक मनुष्य मन का अनुचित भावनाओं में प्रवेश करना रहेगा। वहाँ तक उसका जीवन अनुचितता से व्यतीत हागा और सत्र हा यह क्लेश पायगा।

भूल करना शास्त्र का कारण है। ज्ञान से हा आनन्द का उत्पत्ति होती है। अज्ञान और मोह का नाश करन से हा मुक्ति हाती है। जहाँ मन की अनुचित भावना आर अनुचित प्रवृत्ति है वहाँ जीवन है। जहाँ उचित भावना और उचित प्रवृत्ति है वहाँ स्वतन्त्रता और शांति है।

प्रकरण अठारहवाँ

सुख आर शान्ति के लिए परमात्मा का स्मरण एक रात्ता और एक रक, एक सुखी आर एक दुःखी, एक नीरोग और एक

रात्रिमात्रा विविधतायें विश्व में दृष्टिगोचर होती हैं। इसका कारण पुण्य और पाप है। पुण्य से जीव सुखी और पाप से दुःखी होता है।

विश्व में कार्य कारण के नियम अचल है। कारण के बिना फल नहीं होता। वतमान, सुख दुःख के कार्य उनका कारण की अपेक्षा रहते हैं। प्रथम कारण आगे पीछे फल होता है। इस नियम के अनुसार मनुष्य का वर्तमान स्थिति पूर्व के कारणों का फल है। धन आदि अतुल्य साधनों का प्राप्ति में, पुण्य के साथ, यदि पुण्य प्रकृति हो तो मनुष्यों को सफलता हाता है। परमात्मा और परोपकार के माया में, जीव पुण्य उपाय करता है। मन, उचन, शराव और वनादि के मदुपयोग करने से पुण्य का उपाय करता है और इससे जीव सुखी होता है। परमात्मा का स्मरण करने से आत्मा निर्मल होता है। तथा निरापेक्ष प्रकाश से पुण्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार जीव, आत्म मार्ग में उत्तरात्तर बढ़ता जाता है।

परमात्मा के नाम का स्मरण, निश्चय, धनान्ध, बाल युवा, वृद्ध सुखी और दुःखी प्रत्येक जीव कर सकता है। जिसका समय कम मिल वह भी हर समय उठते बैठते चलते फिरते और काम-काज करते समय भी प्रभु का स्मरण कर सकता है। धन और शराव का शुद्धि न होने हुए भी चुपचाप मन में जप करता, अनुचित नहीं। चलने के समय मन को जप के काम में लगाने में जप हो सकता है। रेल में या जहाज में या...

हुए भी वहाँ बैठे बैठे मन में, जप कर सकते हो। यदि जप करते करते निद्रा भी आनाय, तो स्वप्न भी आवगे : तात्पर्य जिस समय या स्थान वैसा ही क्या न हो, जप करने में रोड़ बाधा नहीं। मनुष्यों की आयु तो किसी न किसी प्रकार से पूर्ण होती है। परंतु यदि अपने जीवन में कोई एक महत्व का कार्य किया हुआ हो तो भागी जीवन सुरक्षित बनता है। व्यवहार के किसी कार्य में भी परमात्मा का नाम न भूलो। विशुद्ध, कार्यक पूर्ण होते ही तुरन्त प्रभु का नाम स्मरण करो। ग्यन दशा में भी परमात्मा का नाम स्मरण होता रहे। ऐसी स्थिति को मनुष्य इस जीवन में प्राप्त करे तो उपन मनुष्य जीवन प्राप्त करके अन्धी कमाई की ऐसा माना जाता है। तथा उर्मी का जन्म सफल समझा जाता है।

जाप अनेक प्रकार के हैं जिस समय अपना माध्य स्मरण राम राम में अपना लक्ष्य रमा रहे वह ही जाप उत्तम है। ऐसा जाप—“ॐ अह नम” यह पाँच अक्षरों का है। इसका अर्थ यह है।

ॐ कार में पाँच परमेशी का समावेश होता है।

एक परमेशी यह आत्मा का शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति की पाँच भूमिकाय है। इनमें से प्रत्येक भूमिका के प्रथम अक्षर के मूल से ॐ कार बनता है।

अरिस्त, अशरीरी, आचाय, उपाध्य और मुने यह पाँच भूमिका हैं।

असरीसी—आमा के वृण गुण स्वल्प को प्राप्त, कम अल्प
 मी सिद्ध परमात्मा है। उदाहा उदाहान वृण मत्त मत्त स्वल्प
 सिद्ध, अत्र, अमर, अशितामी "याति" अनज ताता मे पुका
 जाता है। इसके अन्तर नियोग प्राप्त मासगत अनज आमा
 का समावेश होता है।

अविद्वान्—यह एक विशिष्ट वृण स्वल्प परमात्मा का नाम
 है। और देह के त्याग करने पर यह सिद्ध परमात्मा गिता जा
 जाता है। अथवा यह प्र यर वृण ज्ञानी करन ज्ञानी मीर्षद्व
 आति का समावेश होता है।

आचार्य—य अन्तर मनु मात के रमज परिषद मन्त्रे
 शास्त्र, मय मनु के प्राप्त पादर मनुदाय स्वामा और पूजा
 प्राप्त करने से अत्यन्तगत आति का समावेश होता है।

अध्याय—य अन्तर मूल वृण मात्र के प्रतिपाद्य अन
 पावों से जागृति का नाम यह शास्त्र के मापका का समावेश
 होता है।

मुनिश क अन्तर जादा का आति मीर्षद्व आति के अत्यन्त
 मर्षक त्यागन पात पैसाग में मन्त्र करन करन स्वपरोपका
 मय मातु वर का समावेश होता है।

इस मय के प्रथम अन्तर अ, अ, आ, ए म म अ के का
 का हुआ है। यह एक वृण के नियन्त्रण का नाम है।

अर्थात्—एक परमात्मा का नाम है। यान्त्र मे यान्त्र वि र
 कल, मय का मय, "कट" है। इसमें विभक्त योग्य दुसरा क

नहीं है। अहं शक्त सिद्ध चक्र का ज्ञान मंत्र है। सिद्ध प्रभुआ का समुदाय सिद्ध चक्र है। तिसम त्रिरत्र व तत्त्व रूप देव, गुरु धर्म इन तीन तत्त्वों का समावेश होता है। अरिहन्त और सिद्ध इन दो के अद्वैत का समावेश होता है। आचार्य उपाध्याय और मुनि इनका गुरुत्व में समावेश होता है। दशन, ज्ञान चरित्र और तप इन चारों का धर्म में समावेश होता है। आत्मा व शुद्ध स्वरूप का प्रकट करने का साधन धर्म है। आत्मा आदि प्रभुओं का पूण ज्ञान "ज्ञान" है। इन ज्ञान में रहने वाली दृढ़ श्रद्धा का नाम "दशन" है। ज्ञान और श्रद्धा के परिमाण में व्यवहार करना 'चरित्र' है। सत्य इच्छा का निराध "तप" है। इन चारोंको धर्म कहा जाता है। ऊपर के पाचपरमणी के साथ इनका मिलान से इनकी नव सत्या बनती है। इस नव व समुदाय को सिद्ध चक्र कहते हैं। इस नव नव पद का ताबक अहं शक्त है। अहं शक्त, जीव रूप होना म उसमें सिद्ध चक्र का समावेश होता है। आत्मा का उच्च भूमिका म ल ज्ञान वाल देव गुरु और धर्म म लक्ष्य लगा कर जाप करना, आत्मा व शब्द रूप तप व समान है। यह जाप 'ॐ अहं नमः' है। इस मंत्र व जापि जाप करने चाहिये। इससे नाथ विचार पास नहीं आता। मन व अन्य दिशा म न भटने म, यह जीव पाप म उद्ध नहीं होता। जाप से अपनी आर पत्र परमाणुआ का आरक्षण होता है। अपने इधर उधर का तातावरण पवित्र होता है। मन और शरीर आदि क परमाणु पत्र बनते हैं। सकल्प सिद्ध हो जाते हैं। जाप कम होता है। प्रतिभूलतायें दूर जाता है।

अनुकूलतायें प्राप्त होती हैं । प्रभु के मार्ग में आगे बढ़ने के अधि-
कार होते हैं । लोक प्रिय बनते हैं । "ग्रहण" का न्यायुलता कम
हावी है, शीघ्र समय के बाद वचन सिद्धि की प्राप्ति होती है ।
यह सब कुछ परमात्मा के नाम स्मरण से होता है । तात्पर्य नि-
जप से प्रत्येक मन कामना मिद्ध होती है । अधि ज्ञान की
भाति त्रिकाल ज्ञान भी जाप से प्रगट होता है । यह गुण जाप से
प्रगट हाता है ।

किसी भी धर्म को इस जाप से जाधा नहीं पहुँचता । इसका
कारण यह है कि इसमें किसी धर्म विशेष का विशेष प्रकार से
नाम नहा लिया जाता है । पर, साधारण नाम है । निश्चय म
प्रत्येक योग्यातियोग्य तत्व को मैं नमस्कार करता हूँ । यह इसका
सामान्य अर्थ है । इसलिए, महा फलदायक यह जाप, प्रत्येक
मनुष्य को करना उचित है । आगे बढ़ने की इच्छा वालों के
लिए यह जाप प्रथम भूमिका है । आगे बढ़ने के, भृकुटी
में उपयोग के साथ ध्यान देकर खुला हुआ आँसुओं की तरह निमी
लित नेत्रों से अन्तर्ध्यान हाकर "ॐ अहंनम" इस मंत्र का
जप करना चाहिये ॥ इति ॥

ॐ ग्रन्थ समाप्ति ॐ

इस प्रकार तपगच्छ के आचार्य श्री विजय कमल
सूरि जी के शिष्य, आचार्य श्री विजय केसर सूरि का बनाया
आर समग्र किया हुआ "प्रभु के मार्ग में ज्ञान का प्रकाश" इस
नाम का यह ग्रन्थ १२० म० १६८४ का श्रावण कृष्ण पक्ष की
चास नगर में समाप्त हुआ ॥ शुभमस्तु ॥

‘आत्मानन्द’



जैन श्रेताम्बर समाज में हिन्दू भाषा में नामयित पत्र का अभाव देखकर, और इसका हाना अति आवश्यक समझ कर श्री आत्मानन्द जैन ट्रस्ट सामाज्य, श्री आत्मानन्द जैन गुण्डुल, पत्रान और श्री आत्मानन्द जैन महामभा पत्रान ने इस अपने मुग्य पत्र रूप में निकालना प्रारम्भ किया है। इसमें वामन, एतिहासिक, सामाजिक नतिज और वनानिक लेख रहते हैं। वार्षिक चन्द्रमा सत्र साधारण का गुणवत्ता के लिए वरुण २) रक्का है। हर सात एव बहुरगा चने पचास भी मेम्बरा का भेट किया जाता है।

ऐसे पत्रों का सफरता प्रहारा की बहु सख्या पर निर्भर है। अतः जैन समाज में मरिचय प्राथना है कि इस पत्र को अपने स्वयं इसके प्रहारा वनें, और अपने मित्रों का भी प्रहारा बनायें।

चदा मना आडर से हा भेचना उचित है वरुण वा० पा० द्वारा ३) अरिच दन पडत है।

पता —

मैनेजर—‘आत्मानन्द’

अम्बाला शहर ।

नवतत्व संग्रह तथा उपदेश वावनी



यह अपूर्ण प्रथम श्री सद्गुरु न्यायाम्भानिधि जैनाचार्य
 । १०८ श्रीमद्विनयानन्द सूरि (आत्माराम जा) महाराज
 । अद्वितीय रचना है । उनका अपना हस्तलिखित प्रति से श्री
 । रालाल कापडिया एम०, ए०, ने जैनाचार्य श्री विजय बल्लभ
 । श्री महाराज का प्रेरणा से इसका संपादन किया है । इसमें
 । कुछ नहीं कि कभी पुस्तकें बार बार नहीं प्रकाशित हुआ करती ।
 । म अपूर्ण प्रथम का परम रचना और उनकी रक्षा करना
 । प्रत्येक जैन का कर्तव्य है । ऐसी पुस्तक से हरकाल म प्रथ
 । र्क्षा तथा जाति का नाम जगद्विख्यात होता है । पुस्तक सचिन्द्र
 । म सचित्र है और अद्भुत माटे कागज पर डगल वाउन साइज
 । वमर्न के प्रसिद्ध निर्णय सागर प्रेस म छपा है । मूल्य मात्र
 । १० ४) है । आशा है कि प्रत्येक जैन इस प्रथ के प्रचार म
 । यथा शक्ति योग देगा ।

पंच प्रतिप्रमाण (हिन्दी)

यह पुस्तक शुद्ध सुन्दर टाइप में छपी है । पुस्तक सचिन्द्र
 है । मूल्य केवल ॥) प्रति है ।

पता—

मन्त्री, श्री आत्मानन्द जैन सभा,

अम्बाला शहर ।

SHRI ATMANAND JAIN SABHA

उपयोगी पुस्तकें—

मूल्य

१—मामाचिन् तथा चैयन्दन (हिन्दी भाषा)

(याचक—ब्रह्मचारा शकरदास जा)

३)।।

२—गृहस्था क राजाना फराइत्र थार उासा मस्तद

(उदू भाषा) अनुवाक्य ब्रह्मचारा शकरदास विना मूल्य

३—श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावला—भाग पदला

।।

४—श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावला , दूसरा

।।

५— " , " तासरा

।।

६— " , " चौथा

।।

इन पुस्तका क अध्ययन से सर्व साधारण का जैनधर्म के वास्तविक मम का पूरा पूरा ज्ञान हा सकता है । यह पुस्तक प्रत्येक घर म रहनी चाहिये ।

मिलन का पता—

मन्त्री, श्री आत्मानन्द जैन मभा,

अम्बाला शहर ।

